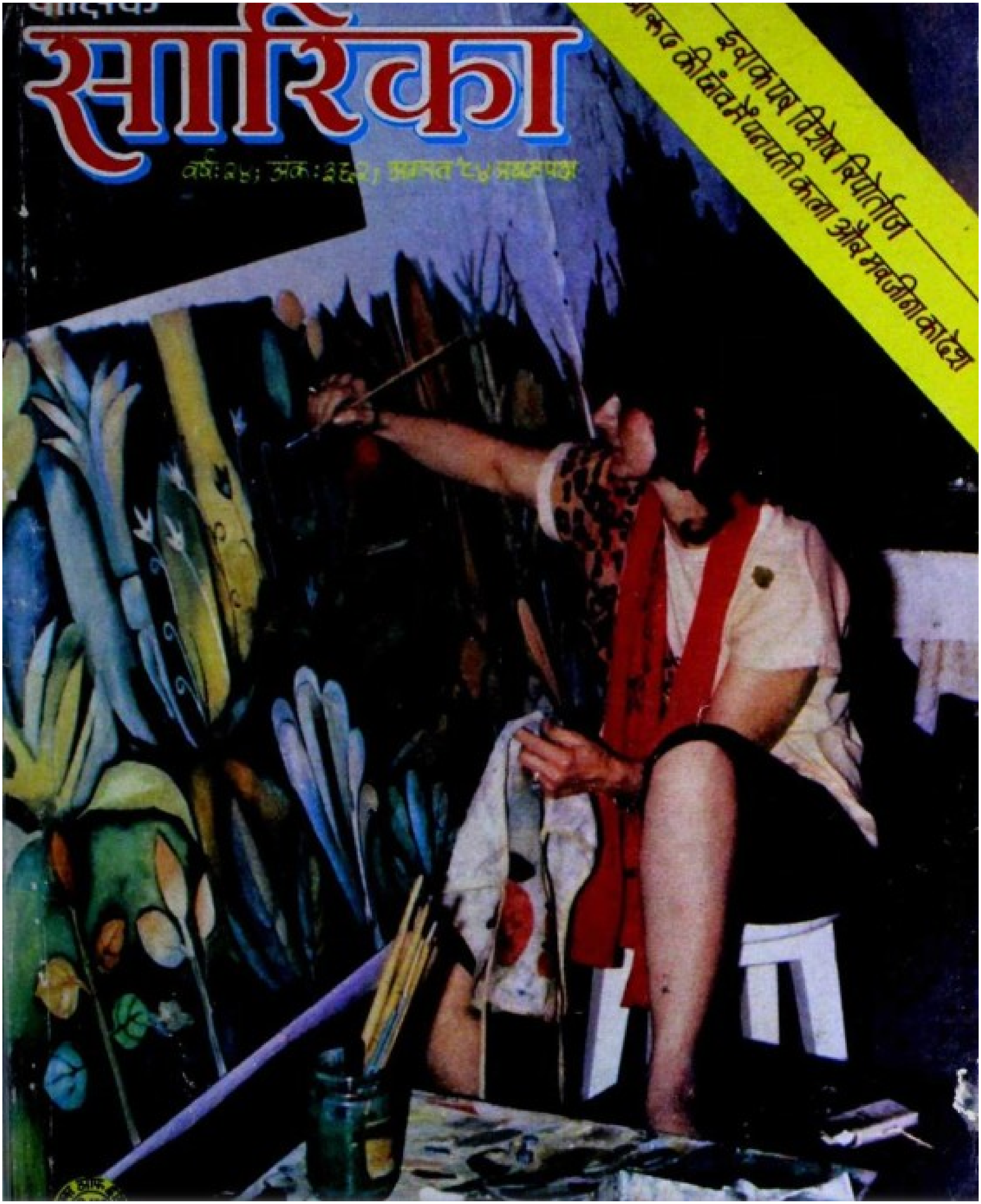
सारिका
इराक पर विशेष रिपोर्ताज

सारिका
सर्वभाषा कहानी एवं लघुकथा प्रतियोगिता : 1984

पुरस्कार योजनाएं

कहानी प्रतियोगिता

प्रथम पुरस्कार : 1500 रुपये
द्वितीय पुरस्कार : 1000 रुपये
तृतीय पुरस्कार : 750 रुपये
पांच सम्मान पुरस्कार : 400 रुपये प्रत्येक

लघुकथा प्रतियोगिता

प्रथम पुरस्कार : 200 रुपये
द्वितीय पुरस्कार : 150 रुपये
तृतीय पुरस्कार : 125 रुपये
पांच सम्मान पुरस्कार : 100 रुपये प्रत्येक

सारिका कहानी मंच प्रतियोगिता : 1984

प्रथम पुरस्कार : 500 रुपये
द्वितीय पुरस्कार : 400 रुपये
तृतीय पुरस्कार : 300 रुपये
दस प्रोत्साहन पुरस्कार : 200 रुपये प्रत्येक

▣ विशेष

सारिका कहानी मंच के सदस्य अपनी रचनाएं सीधे हमें न भेजकर अपने महाविद्यालय/विश्वविद्यालय में स्थापित मंच के संयोजक और संरक्षक के माध्यम से भिजवाएं, जिसमें प्रमाणित किया गया हो कि रचनाकार सारिका कहानी मंच का सदस्य एवं संस्थान का छात्र है. शेष नियम अन्य प्रतियोगिताओं की भांति ही लागू होंगे. छात्र-छात्राएं किसी भी प्रकार की अन्य जानकारी के लिए अध्यक्ष, सारिका कहानी मंच, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002 के पते पर पत्र-व्यवहार कर सकते हैं. वे अपनी रचना पर घर और संस्थान दोनों के पते लिखें.

...का

...र कथा-जगत की जीवंत पाक्षिकी

...क : ३६२; १ से १५ अगस्त, १९८४

...ह : काशीनाथ सिंह
...रामसरूप अणखी
...उपाध्याय
...उषा प्रियंवदा
...ास जोशी
...ना सिंह

...न्यासिका
...र सिंह

...व में पनपती कला
...का देश : नासिरा
...क की पृष्ठभूमि पर
...ज
...ज़रिए खुलनेवाली
...'तलाश :
...नंदन

...ार

... : सपनों का देश :
...ार बतूल अलफेक
...रा शर्मा की अंतरंग

...आकर्षण

...दन घिसें :
...साई
...ी डायरी : मथुरादास
... वंशधर : सूत्रधार

लघु रचनाएं

10 कीमत : पुष्कर द्विवेदी
16 घर का आदमी : राजेंद्र मेहता
18 एक उसका होना : कमल चोपड़ा
21 ग़ज़ल : कैलाश सेंगर
28 ग़ज़ल : शफक
29 स्टैंडर्ड : अमर कोमल
34 रावण की लंका : आनंद बिल्थरे
37 ग़ज़ल : अश्विनी पाराशर
43 ग़ज़ल : शबाब
44 रेखाएं : दामोदर खड़से
65 गद्दा लिहाफ : राकेश विशाल

स्थायी-स्तंभ

6 आपकी बात
39 तस्वीर बोलती है
46 और मलाये न बने
67 पखवारे की पुस्तकें
73 हलचल

...ल्ली-110002

अगला अंक

...एक नागरिक हैं या महज वोट?

...माहौल में नागरिक अधिकारों और वोट की राजनीति ...त करते हुए सामाजिक स्थिति को बयान करती—

...ाक्षस, काशीनाथ सिंह, मनीष राय, इला ...मेहता, से.रा. यात्री की कहानियां.

... : 'किसी देश के किसी शहर में' शीर्षक योजना के तहत ...उपाध्याय की कहानी.

...ुनि के वंशधर : समकालीन रंगचेतना के बीच उरमता ...गर : **पटना**

...दास की डायरी : पहले जूता 25 का पड़ता था तो अब ... का! —इसी सिद्धांत और सूत्र के तहत इस बार डायरी ...ो का शीर्षक है—**'पड़ता सिद्धांत'**

...शमत : कृष्णा सोबती का व्यक्ति-चित्र

...ात्कार

...धर मालवीय से **राजकुमार गौतम** की अंतरंग बातचीत

...द की छांव में पनपती
... और मरजीना का देश !

...आतंक में जी रहा इराक, ईरान के मुकाबले में किस ...रहा है और पाश्चात्य प्रभावों के बावजूद वहां की संस्...ि सुदृढ़ है? युद्ध के दिनों में कला तथा संगीत का माहौल ...र वहां के नागरिक जीवन में प्रगति एवं विकास का ...शा बना रहेगा या टूट जायेगा?—**नासिरा शर्मा** के ...की समापन किस्त.

...के रविशंकर : मुनीर बशीर

...ल नंदन की विशेष रपट

सारिका

16 अगस्त, 1984

आपकी बात, तस्वीर बोलती है, ग़जलें, लघुकथाएं, पखवारे की पुस्तकें, हलचल, तुलसीदास चंदन घिसें, कार्टून, चलते-चलते आदि स्थायी स्तंभों सहित.

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : २४; अंक : ३६२; १ से १५ अगस्त, १९८४

कहानियां

9 वाहे गुरु दी फतह : काशीनाथ सिंह
14 जोहड़ बस्ती : रामसरूप अणखी
26 समय : रमेश उपाध्याय
32 आधा शहर : उषा प्रियंवदा
41 ग्रहण : श्रीनिवास जोशी
48 तमाशाई : वीना सिंह

▣ धारावाही उपन्यासिका

62 नपुंसक : मधुकर सिंह

रिपोर्ताज

52 बारूद की छांव में पनपती कला और मरजीना का देश : नासिरा शर्मा का इराक की पृष्ठभूमि पर ताजा रिपोर्ताज
59 साहित्य के जरिए खुलनेवाली खिड़कियों की तलाश : कन्हैयालाल नंदन

साक्षात्कार

57 भारतवर्ष मेरे सपनों का देश : इराकी चित्रकार बतूल अलफेक कई से नासिरा शर्मा की अंतरंग बातचीत

अन्य आकर्षण

23 तुलसीदास चंदन घिसैं : हरिशंकर परसाई
30 मथुरादास की डायरी : मथुरादास
70 भरतमुनि के वंशधर : सूत्रधार

लघु रचनाएं

10 कीमत : पुष्कर द्विवेदी
16 घर का आदमी : राजेंद्र मेहता
18 एक उसका होना : कमल चोपड़ा
21 ग़ज़ल : कैलाश सेंगर
28 ग़ज़ल : शफ़क
29 स्टैंटर्ड : अमर कोमल
34 रावण की लंका : आनंद बिल्थरे
37 ग़ज़ल : अश्विनी पाराशर
43 ग़ज़ल : शबाब
44 रेखाएं : दामोदर खड़से
65 गद्दा लिहाफ : राकेश विशाल

स्थायी-स्तंभ

6 आपकी बात
39 तस्वीर बोलती है
46 और मलाये न बने
67 पखवारे की पुस्तकें
73 हलचल

सहायक संपादक
अवधनारायण मुद्गल
उप-संपादक
रमेश बत्तरा
सुरेश उनियाल
बलराम
महेश दर्पण
सज्जाकार
सुमीता

▣ संपादकीय पता : सारिका, 10, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

आपकी बात

शुरुआत आशाप्रद

● सुशील अकेला, खगड़िया

नयी और भावी पीढ़ी के नाम समर्पित अंक यानी 'नवांकुर विशेषांक' सचमुच एक संग्रहीय अंक लगा. नयी युवा-प्रतिभाओं को तलाशने और उन्हें प्रोत्साहन देने का जो सिलसिला 'सारिका कहानी मंच' के माध्यम से शुरू किया गया है, उसकी शुरुआत में ही सुखद आश्चर्यजनक परिणाम दिखाई दिये.

सभी स्थायी स्तंभों व दो-दो विचारणीय विषयों पर सारगर्भित परिचर्चा की प्रस्तुति ने अंक को और भी रोचक बना दिया है.

'सारिका' के एक और सार्थक अंक के लिए मेरी ओर से हार्दिक बधाई व मंगलकामनाएं.

बेहतर लेखन की संभावनाएं

● वी. के. जौहरी 'बदायूंनी', बदायूं

'नवांकुर विशेषांक' देखा. कहानी '**लौटते हुए**' (गिरीश भरदया) अंक की सभी कहानियों में सर्वश्रेष्ठ रही. वस्तुतः श्री भरदया साधुवाद के पात्र हैं. शेष सभी कहानियां भी अच्छी हैं. यह तो सच है कि इन कहानियों में भावुकतापूर्ण सृजन की झलक स्पष्ट दृष्टिगट होती है, तथापि इन सभी कहानीकारों से भविष्य में बेहतर लेखन की उम्मीद की जा सकती है. मेरी हार्दिक शुभकामनाएं इन सभी नवांकुरों के साथ हैं.

'भावी प्रतिभाओं की तलाश' जैसे सद्प्रयास हेतु 'सारिका कहानी मंच' को भी हृदय से बधाई देना चाहूंगा.

बाजी किसके हाथ !

● सुशीलकुमार शर्मा, फिरोजाबाद

विनयशंकर पांडेय द्वारा लिखित कहानी '**अस्सी कोस का पोखरा**' मेरी दृष्टि में प्रथम पुरस्कार योग्य है. नयी पीढ़ी की न्याय के प्रति संवेदनात्मक मनःस्थिति का विवेचन रचनाकार ने जितना मार्मिक किया है वह प्रतिष्ठित कहानीकारों द्वारा भी दुर्लभ है. प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में सेक्स के प्रति मानवीय अनुभूतियों का विवेचन अधिकतर कहानीकारों को सुविधाजनक लगता है.

ऐसे वातावरण में पांडेयजी से कथा जगत को अच्छी आशा रखनी चाहिये.

आपका स्वागत है

● नरेंद्रकुमार दीक्षित, जबलपुर

उदीयमान प्रतिभाओं की कहानियां पढ़कर आश्वस्त हुआ कि छात्रजगत में संवेदना जीवित है और इन श्रेयस्कर भावनाओं की कहानियों के क्षेत्र में परिष्कृत अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित-पुरस्कृत करने के लिए आप निश्चय ही

नये लेखकों की कहानियां पढ़ना यानी एक यातना से गुजरना. . .

● अनूप वर्मा, धनबाद

'नवांकुर विशेषांक' को पढ़ना शुरू करते वक्त बहुत उत्साह था मन में कि यह अंक कुछ 'नया' प्रस्तुत करेगा. . . कहानीकारों की नयी फसल से परिचय करायेगा. पर हाथ क्या लगा? सौ प्रतिशत शुद्ध निराशा. आपके इसी अंक में परसाईजी ने अपने स्तंभ में वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में घुस गये 'बौद्धिक कायरों' और उनकी घुसपैठ के परिणाम पर चिंता व्यक्त की है. पर, इस विशेषांक की कहानियों को पढ़कर लगा कि स्थिति कई गुना ज्यादा बदतर हो चली है.

ये कहानियां सिर्फ एक तथ्य का प्रमाण हैं—कि आपके ये 'नवांकुर' बेचारगी की सीमा तक मानसिक रूप से दिवालिया हो चुके हैं. कहानियों में वर्तमान जीवन के लगभग हर महत्वपूर्ण पहलू पर लेखनी चलायी गयी है, पर प्रस्तुति का ढंग इस बात की नंगी चुगली खाता नजर आ रहा है कि ये सारे 'कथ्य' उधार के हैं. कहानियां पढ़ते वक्त दो ही बातें दिमाग में आती हैं—कि या तो ये 'नवांकुर' कुछ भी महसूस नहीं करते और या इनकी संवेदनशीलता दस वर्ष के बच्चों से ऊंची और गहरी नहीं है. कुछ कहानियां मात्र 'रिपोर्टिंग' करती नजर आती हैं और कुछ ऐसी हैं मानों एक दस-बारह वर्ष के बच्चे ने एक-दो घटनाओं को जोड़कर एक 'कहानी जैसी चीज' रच डाली हो. और शिल्प के नाम पर तो इनमें एक ही चीज है—सन्नाटा.

मानसिक दिवालियेपन का यह 'सिंड्रोम' तो आपके 'सर्वभाषा कहानी प्रतियोगिता विशेषांक' में भी स्पष्ट था. और इस तथ्य को आधे से ज्यादा निर्णायकों ने दबे-दबे शब्दों में स्वीकार भी किया था. पर 'नवांकुर विशेषांक' ने यह इंगित करने की चेष्टा की है कि विशेषकर 'हिंदी' कहानी का भविष्य अधिक अंधकारमय है. वैसे आपने यह विशेषांक निकालकर अच्छा ही किया. . . अब पाठक 'नवांकुरों' को लेकर कम से कम झूठी आशाएं नहीं पालेगा.

और जब इन 'चुनी हुई कहानियों' द्वारा हमारा इतना 'टॉर्चर' हुआ तो मुझे दया आ रही है आप पर कि उस ढेर को पढ़ने के दौरान आप किस यातना से गुजरे होंगे जिसका चुना हुआ भी इतना यातना दायक है.

हार्दिक साधुवाद के पात्र हैं. 'लौटते हुए' (गिरीश भरदया), 'अनबूझ पहेली' (अलका अग्रवाल), 'काली' (सुब्रतो दत्त), 'मानसिक गुलामी' (सुषमा जुगरान) शीर्षक कहानियां काफी रुचिकर लगीं.

एक नयी दिशा

● श्याम संकत, महू (म. प्र.)

'सारिका' का 'नवांकुर विशेषांक' निकालकर आपने नौजवान कलम को जो तवज्जह दी है उसके लिये आपका आभार मानता हूं. कॉलिज के छोकरे चुनाव लड़कर, प्रदर्शन, परीक्षा-बहिष्कार, नकलपट्टी, मार-पीट, नशा, फैशन जैसी चीजों से अपनी पहचान बनाते होंगे लेकिन उनके दिल के किसी कोने में वेदना और उबाल भी होता है इस बात को आपने उनकी कहानियां छापकर पुख्ता किया है. आपकी इस बात का मैं समर्थन करता हूं कि यह 'भविष्य की कथाकार पीढ़ी' है.

संजीव 'कुमार' की '**इसी बरगद की तरह**' को पूरा हक था प्रथम पुरस्कार पाने का. लेखक ने शहर में पढ़े-लिखे युवा डॉक्टर को गांव से बरगद की जड़ों की तरह जोड़कर उन डॉक्टरों के मुंह पर तमाचा मारा है जो गांव में पोस्टिंग हो जाने पर शहर में तबादला करवाने के लिए बेतहाशा हाथ-पैर पटकते हैं. सांत्वना पुरस्कार की कहानियों में सबसे ज्यादा जिस कहानी ने छुआ वह थी विनयशंकर पांडेय की '**अस्सी कोस का पोखरा**'. अपराधियों के बड़े-बड़े नगाड़ों के बीच एक न्याय प्रिय संवेदनशील विद्यार्थी की अकेली बांसुरी ने प्रभावित किया.

नौकरी के अकाल और घूस-सिफारिश के तूफान में फंसी यह पीढ़ी निरंतर संघर्ष के साथ सृजन की किश्ती को संभाले रखे, यही कामना है.

सबलता है कहां?

● प्रभा मेहता, फरीदाबाद

विनयशंकर पांडेय की कहानी '**अस्सी कोस का पोखरा**' बेहद पसंद आयी. डिप्टी कलक्टरी वाले पोंगे को एक ही क्षण में उतार फेंकनेवाले बाबूजी, एक दिलेर अन्वेषी माने जानेवाले पुलिस आफीसर की बदरंग होती हुई वर्दी में मामाजी, अपने ही उपदेशों व कथनों की धज्जियां उड़ाते हुए कर्त्तव्यनिष्ठ एवं ईमानदार माने जानेवाले शिक्षक गांगुली सर और टूटते हुए मनोबल के साथ स्टूडेंट यूनियन का प्रेसिडेंट अरविंद सब के सब आज के एक बहुत बड़े सत्य को नग्न करते हुए हमारी कायर मनोवृत्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं और जो लोग आततायियों का शिकार बनते हैं वो एकदम अकेले पड़ जाते हैं क्योंकि कोई निर्मल उनकी सहायता के लिए आगे नहीं आने दिया जाता.

नये लेखकों की कलम और नये पाठकों की समझ : आमने-सामने

● मनोज शर्मा, मुकेरियां

क्रम से चलते हुए '**इसी बरगद की तरह**' (संजीव 'कुमार') प्रथम पुरस्कार विजेता कहानी है. कहानी भाषा व शैली के अर्थों में अच्छी लगी और वस्तु-शिल्प ने भी प्रभावित किया. कहानीकार ने उम्र से बढ़कर भावानुभूति दी है. बधाई हो. लेकिन एक दोष अटका कि कहानी में जिस डॉक्टर को कशमकश चित्रित की है, 'वह' कहीं भी पूरी तरह से गांव का अभिन्न अंग नहीं लगा. '**लौटते हुए**' (गिरीश भरदया) कहानी—'तुम्हारी यह नौकरी एक अंधेरी सुरंग की यात्रा है' वाक्य के साथ बहुत ही सशक्त हो गयी है, लेकिन अंतिम वाक्य—'बीरेंद्र उसे मारना मत. . . ' की सार्थकता समझ नहीं आती. '**अंतहीन**' (सुनील कुमार आशू) का अंत देख कहानी जानबूझकर जल्दी से छोटी की गयी लगती है. '**इंतजार**' (लोकेश शुक्ल) का आरंभ विशेष रूप से वह बात उठाता है जिससे पाठक कहानी को पढ़ने हेतु उत्सुक होता है. कहानी सामान्य होने के साथ ही कहानीकार की उम्र यानी नवयुवक पीढ़ी की एक मुख्य समस्या को रेखांकित करती है लेकिन अगर लोकेश ने थोड़े से शैलीगत प्रयोग किये होते तो कहानी में 'वार्षिक विद्यालय स्तरीय' पत्रिका का स्तर उपस्थित न हो साहित्यक, विशेषकर 'मोहयुक्त विशेषता' स्वयंमेव पनप उठती. '**एक ही मिट्टी**' (बनवारी लाल नेहरा) ने बिना उलझे व उलझाए अपने उद्देश्य के साथ प्रभावित किया. '**अनबूझ पहेली**' (अलका अग्रवाल) में लेखिका ने त्रासदी पैदा करने की जो कोशिश की है वह कहानी के कुछेक नाजुक मोड़ों पर कहानी को नाजुक बनाती है. भाषा में भी परिपक्वता नहीं है. '**काली**' (सुब्रतो दत्त) का नाम पढ़ते ही कुछ विशेष परिस्थिति उभरती लगी (संभोग से समाधि की मानसिकता जैसी) शायद कोई मनोवैज्ञानिक कथा. लेकिन पता नहीं क्यों—'सवेरे की चाय अकेले पीने की आदत छूट गयी है' वाक्य बार-बार पढ़ने पर भी कुछ जंचा नहीं. '**अस्सी कोस का पोखरा**' (विनय शंकर पांडेय) में आवृत्ति लाकर यूं ही कहानी को लंबा किया गया है. यानी कहीं-कहीं तो वाक्यों में एक ही भाव को दोहराना बात को सुदृढ़ बनाने की अपेक्षा कमजोर करता है. 'दोनों तरफ रिवाल्वर से लैस. . .' वाक्य में दोनों तरफ रिवाल्वर दर्शाने का क्या प्रयोजन? क्या बिहार में पुलिस दोनों और रिवाल्वर लटकाती है? '**सारिका**' को बधाई है कि नये लेखकों का उत्साह बढ़ाने हेतु '**मेंहदी**' (नरवीर यादव) जैसी कहानियां भी किसी न किसी संदर्भ से प्रस्तुत करती है. कहानी में बेहद नाटकीयता भरी गयी है. '**मानसिक गुलामी**' (सुषमा जुगरान) में कहानी अपने आप जन्म नहीं लेती, हां अंत में आकर जो पकड़ प्रस्तुत हुई है, अगर आरंभ में भी ऐसा ही होता तो बात पैनी हो जाती. अंतिम कहानियों में जहां '**राह के फूल**' (विजेंद्र प्रताप सिंह बिसेन) का आदर्शवाद सर चढ़ के बोलता लगा, वहीं '**कंडोलेंस**' (जिया मुसव्विर खान) ने मुखौटा और स्वःतुष्टि प्रवृत्ति की बखिया उधेड़ते हुए मुझ जैसे पाठक की समस्या के सुधार में सहानुभूति ले ली.

आलोचक झूठे पड़ गये

● धर्मेंद्रकुमार चाचाण, तारानगर

कहानी '**लौटते हुये**' (गिरीश भरदया), '**अंतहीन**' (सुनील कुमार 'आशू'), '**अस्सी कोस का पोखरा**' (विनयशंकर पांडेय) बहुत पसंद आयीं. इन्होंने उन निष्क्रिय साहित्यकारों की आलोचनाओं को कि युवा रचनाकार बीते दिनों से उत्कृष्ट कुछ भी सामने नहीं ला सकते, असत्य सिद्ध कर दिया.

परसाईजी के व्यंग्य लेख के आगे मथुरादासजी का लेख बाजी मार ले गया. काश! परसाई आलोचकों से आगे बढ़ पाते. व्यंग्य लेखक का काम साथी कलाकारों पर व्यंग्य करना नहीं होता वरन् समाज की परिस्थितियों, राष्ट्र की मानसिकता की ओर तीक्ष्ण दृष्टि रखना होता है.

शिकायत मुझे भी है

● राणा प्रताप सिंह, इंदौर

'**सारिका**' द्वारा 'पुरस्कार विशेषांक' के बाद 'नवांकुर विशेषांक' के रूप में श्रेष्ठ लेखन को प्रोत्साहित करना एक सुखद प्रयास है. पिछले दिनों से 'सारिका' विभिन्न स्तंभों एवं विशेषांकों के माध्यम से लगातार नये लोगों को मंच पर ला रही है, जिससे कहानी को एक व्यापक आधार मिल रहा है. प्रयोग के तौर पर इतने प्रयास स्थापित पत्रिकाओं द्वारा कम ही हो पाते हैं.

इस में प्रकाशित परिचर्चा 'विश्वविद्यालय प्रतिभा का विकास करते हैं या ह्रास' के स्वरूप से थोड़ी शिकायत है. विषय की व्यापकता को देखते हुए थोड़ी कोशिश और की जाती तो एक सामान्य राय बनाने में मदद मिलती. दिल्ली, देश की राजधानी के अनुरूप, कई मायनों में विशिष्ट है. शिक्षा भी उनमें से एक है. दिल्ली के शिक्षक और शिक्षण संस्थाएं समूचे देश का प्रतिनिधित्व कतई नहीं करतीं. क्या यह जरूरी नहीं था कि देश के दूसरे भागों से भी प्रतिक्रिया मांगी जाती? बहुत संभव है कि छोटे शहरों और दूर-दराज के ग्रामीण इलाकों के महाविद्यालयीन शिक्षकों के अनुभव कुछ और होते. और प्रतिभाओं का विकास सिर्फ दिल्ली में ही तो नहीं हो रहा है.

तस्वीर बोलती है

सारिका : अंक 357

पुरस्कार विजेताओं को बधाई

प्रथम पुरस्कार : 50 रुपये

यूं अमूमन रोटियों से पेट भर जाता ही है,
पर कभी तो जायका मुंह का बदलना चाहिये.

● मनोज गुप्त, मुरारी एजेंसीज, अस्पताल के सामने, लखीमपुर खीरी.

द्वितीय पुरस्कार : 30 रुपये

हमने हंसी फरेब की कीमत चुका तो दी,
फिर भी सितम जरीफ है मुस्कान का चेहरा.
—योगेंद्र दत्त शर्मा

● धर्मपाल सांगवान, मुख्य डाकघर, भिवानी-125021

तृतीय पुरस्कार : 20 रुपये

कैसे-कैसे, जीवन यापन,
जिजीविषा का यह विज्ञापन,
कैसा क्रय, कैसा विक्रय है,
सिर्फ जिंदगी का सम्मोहन.
मित्र, देश दर्शन करना हो
तो हम हैं अच्छे वातायन.
सरकारों के शब्दकोष में
ज्ञापन, दमन और आश्वासन.

● घनश्याम भारती, 'लता निवास' खुर्जेवाला मोहल्ला, दौलतगंज, ग्वालियर

● छाया : सतीष जायसवाल

प्रशंसित शीर्षक.

सिर्फ बाहर से सजावट की गयी है,
मुस्कराहट वरना रीती गागरी है.
गौत मत खोजो इबारत देखकर ही,
यह हमारे आय-व्यय की डायरी है.
—विनोद तिवारी

● श्रीमती मधु मिश्र, गोरखपुर

लेने-देने के बहाने, हथेली खुली,
एक पुड़िया के देते अठन्नी मिली.
गैल में, गांव में, धूप में, छांव में,
खोमचे बेचते जिंदगानी चली.

● सुरेंद्र शर्मा, दादाबाड़ी, कोटा

हम गमजदों की गुफ्तगु-ए-तल्ख पर न जा,
किस्मत बुरी सही, पर तबियत बुरी नहीं.
—फिराक गोरखपुरी

● श्रीमती शशि साहनी, बरेली □

बाहों का ऋण

● प्रदीप दीक्षित 'ध्रुव', इटावा

'पखवारे की पुस्तकें' स्तंभ में '**बाहों का ऋण**' की समीक्षा पढ़कर काफी प्रभावित हुआ. 'आदिम सुख अवैध नहीं होते, अवैध हमारी मान्यतायें होती हैं' पढ़कर सहज ही **नागमणि** (अमृता प्रीतम) का ध्यान हो आया.

नागमणि का नायक जो कि एक पेंटर है, अपनी शिष्या की सहमति पर उससे यौन संबंध स्थापित करता है. नागमणि के नायक व नायिका दोनों ही हीनभावना से मुक्त हैं. वहीं ध्रुवजी के पात्र हीनभावना से ग्रस्त हैं. अतः एक प्रश्न उठ खड़ा होना स्वाभाविक ही है—क्या वर्तमान सामाजिक ढांचे में पनपती हीनभावना का अपराध बोध हमारी वर्जनाओं का ही फल है? क्या उक्त कुंठाओं से मुक्ति पाने के लिए वर्जनाओं का विध्वंस आवश्यक हो गया है? □

वाहे गुरु दी फतह

काशीनाथ सिंह

क्यों होता है ऐसा कि आदमी के लिए न दफ्तर का कोई मतलब रह जाता है और न घर का . . .! दफ्तर और घर के बीच की इस दूरी में आखिर छिपा क्या है! क्या वजह है कि सीताराम घर और दफ्तर में लगभग एक-सी परिस्थितियों में जीते रहने पर मजबूर हैं . . . साहब और बच्चों के बीच फंसे सीतारामकी सीधी-सच्ची कहानी——

सीताराम चले जा रहे थे.

ऐसे, जा तो बहुत सारे लोग रहे थे—कोई साइकिल से, कोई रिक्शा से, कोई स्कूटर से, कोई पैदल, लेकिन सीताराम सिर पर गमछा लपेटे और उसका छोर दांतों में दबाये गुलमोहर और महुवे के पेड़ों से घिरे सड़क पर साइकिल से ऐसे चले जा रहे थे जैसे बगैर मशक्कत के सांस चला करती है.

वे खुश थे लेकिन गा नहीं रहे थे.

उन्हें दफ्तर में एक नया अनुभव हुआ था. अब तक जो सोचा था, वह एक झटके में गलत साबित हो गया था और खुशी इसी बात की थी. कोई मुगालता न रहे, यही अच्छा.

उन्हें ऐसी खुशी, ऐसा संतोष, ऐसी राहत उस समय भी नहीं मिली थी जब ब्याह के तुरंत बाद अन्यतम क्षणों में शांता ने मजाक-मजाक में झकझोर दिया था और उन्होंने मन ही मन समझ लिया था कि नहीं, उनका सोच कितना वाहियात और तर्कहीन था. जबकि उसने कुछ खास नहीं किया था, सिवा इसके कि जब सीताराम अपनी ईमानदारी और सच्चाई का बखान कर रहे थे, वह हंस पड़ी थी. . . सच्चाई तो यह है कि जिस दफ्तर में तुम बाब हो, उसमें बेईमानी की गुंजाइश ही नहीं है.

सीताराम को बोध हुआ—शायद पहली बार, कि वह पेशकार की लड़की है और उससे यह उम्मीद करना कि वह उन्हें समझे, बेकार है.

इसके बाद ही उन्होंने मान लिया था कि घर-वर कुछ नहीं, जो कुछ है, दफ्तर है. दफ्तर में साहब की स्टेनो थी—शीला. शीला ने उन्हें बीड़ी पीते देखकर कभी नहीं टोका था क्योंकि बीड़ी साहब भी पीते थे. सिवा एक मर्तबा के. उसने कहा, "पंडतजी, फर्क है. जीन्स में बीड़ी पियें तो फैशन है मगर धोती में कंगाली में . . ." सीताराम ने तुरंत जवाब देकर उसका मुंह बंद कर दिया था, "जीन्स और धोती के अंदर सब मर्द एक हैं मैडम!"

वह मुसकरायी थी और यह बड़ी बात थी. बात का असर पड़ा था शीला पर. दरअसल, असर बात का ही नहीं, 'साइकोलाजी' का भी पड़ा था जिसका वे अचूक क्षणों में इस्तेमाल करते थे और जो उन्हीं के शब्दों में, 'अगर चाहते हो कि कोई तुम्हारी बात से मुकर न सके तो उसे 'साइकोलाजी' की तरह देखो. उसकी आंखों में अपनी आंखें डालकर.'

लेकिन आज मामला गड़बड़ा गया. सीताराम को साहब ने भुनाने के लिए एक चेक दिया था और कहा था कि 'दो बजे तक रुपये दे आना. तुम जड़ा (बिहार के थे साहब) खुद चले जाना.' उन्होंने जोर देकर कहा था और किसी अर्जेंट मीटिंग में चले गये थे. ऐसे काम वे हमेशा सुद्धू से ही लिया करते थे लेकिन वह छुट्टी पर था. इसके पहले कभी सीताराम को साहब के घर जाने की जरूरत नहीं पड़ी थी. इस दफ्तर में थोड़े ही दिनों से आये भी थे वे. उन्होंने सारा काम पूरी मुस्तैदी से किया और दफ्तर बंद होने से पहले, जब साहब मीटिंग से लौटे तो बता भी दिया. साहब उस समय रिलेक्स कर रहे थे और शीला को कोई गोपनीय और जरूरी 'डिक्टेशन' दे रहे रहे थे.

"किसके हाथ दिया?" साहब ने वैसे ही पूछ लिया. सीताराम बोले, "माताजी को."

साहब की त्योरी चढ़ी, "किसकी माताजी को?" "सर, आपकी माताजी को." सीताराम ने 'साइकोलाजी' से काम लिया. साहब मेज पर घूंसा मारकर खड़े हो गये. वे लाल-पीले होकर गालियां बकने लगे, "इडियट! गधे! मेरी मां को गुजरे दस साल हो गये. . . यू नो! एक तो बदतमीजी करते हो, ऊपर से दीदे. . ." वे जब गुस्से में हकलाने लगे थे तो मौका पाकर सीताराम बाहर खिसक आये थे और सोचने लगे थे उनसे गलती कहां हुई? और उन्होंने बगैर मुश्किल के उसे पकड़ लिया. हालांकि वह बुढ़िया उनकी पत्नी नहीं लग रही थी, लेकिन उन्होंने 'आपकी' न कहा होता तो बात न बिगड़ी होती.

वे अपनी गलती पर शरमाये और अपनी साइकिल के पैडल पर ऐसे पैर रखा जैसे वह एक बुढ़िया घोड़ी हो जिसके लिए न रकाब की जरूरत है, न लगाम की.

'तो नतीजा क्या निकला? वही जो मैंने साइकिल पर बैठते वक्त निकाला था. . .कि दफ्तर भी नहीं. और घर तो बहुत पहले नहीं रह गया था. और असली चीज यही है. यह दूरी. घर और दफ्तर के बीच की यह दूरी. इसे चाहे जो कह लो—सुख, आनंद, जिंदगी, आह!'

उन्होंने पेड़ की छाया में आते ही एक लंबी सांस ली और उतर गये. यहां से बस्ती शुरू होती थी. सड़क के इस पार फलों की दुकान थी और पेड़ की ओर एक बड़ा रिहायशी बंगला. फल की दुकान से उन्हें किसी ने आवाज दी. उन्होंने अचकचाकर देखा, दूसरी मंजिलवाले कार्यालय के सहायक बाबू संतरे का रस पी रहे थे. उन्होंने प्रतीक्षा करने का संकेत किया और साइकिल खड़ी कर दी.

गमछे से मुंह पोछा और पेशाब करने बंगले की चारदीवारी की तरफ बढ़े. उन्होंने जिप खोलकर जैसे ही शुरू किया कि उनकी नजर दीवार पर गयी. कोयले से बड़े-बड़े हर्फों में लिखा हुआ था. . . 'देखो, गधा मूत रहा है.' उनकी पेशाब सटक गयी. उन्होंने लिखावट पर गौर किया और समझने की कोशिश की कि यह ताजा है या काफी दिन पहले लिखा गया है. वे कुछ समझ नहीं पाये. उन्होंने शायद पहले कभी इसे नहीं देखा था.

कीमत

■ पुष्कर द्विवेदी

वह एक हड़ियल देहवाला युवक था. नेत्र, कोटरों में से बिलाबिला रहे थे. बुझे-बुझे चेहरेवाला वह नौजवान लंबे-लंबे डग भरता आ रहा था.

"कहो!" मेडीकल स्टोरवाला उस युवक को देखते ही खुशी से चहकने लगा, "लगता है आज कहीं से फिर 'साक्षात्कार-पत्र' आया है."

"हां भई. . . जाने कब तक ये खून चुसाऊ 'कॉल' आते रहेंगे." कहते हुए उसने एक लाल रंग की बोतल उस मेडीकल स्टोर के काउंटर पर रख दी, "ये बारहवीं बार इंटरव्यू देने जा रहा हूं. . . होना-हवाना कुछ नहीं. फिर भी. . ."

"लो भई चालीस रुपये पूरे." मेडीकल स्टोरवाले ने प्रसन्नता से रुपये गिनकर दिये.

"इस बार साठ रुपये चाहिए."' युवक ने अकड़कर कहा, "ये असली और निरा गाढ़ा खून है."

". . ."

"चुप क्यों?. . . तो चलूं आगे?" युवक ने काउंटर से बोतल उठा ली.

"तू पुराना... है भई... ले पचास का एक नोट ले. आजकल बस रखी ही रहती हैं बोतलें. इन गर्मियों में ऑपरेशन कम होते हैं न!" स्टोरवाला कुछ मनाता हुआ-सा अपनी मंदी की वजह भी बता उठा.

"चल निकाल." युवक एक पचास का नोट लेकर चलता बना.

"एक बोतल खून चाहिए."

"ये लो भई, पर्चों के अनुसार."

"कीमत?"

"दो सौ रुपये."

"दो सौ रुपये?"

"अरे भई, लेना हो तो लो. ऐसी गर्मी में खून तो क्या पसीना भी कम होने लगता है लोगों के अंदर."

उसकी आंखों में खून उतर आया, इस खूनी काला-बाजारिये के लिए. पर उसकी मां की हालत अधिक गंभीर थी. इसलिए खून का घूंट पीकर वह रह गया. और चुप-चाप दो सौ रुपये देकर लाल-लाल आंखें किये बोतल को देखता हुआ चला आया.

मेडीकल स्टोरवाला धीरे-से उसके पीछे बड़बड़ाया, "हुंअ, चले आते हैं, जैसे इनके बाप का खून है." □

● कल्पना नगर, सिविल लाइंस, इटावा (उ.प्र.)

उन्होंने जिप बंद की और सहाय बाबू के पास आये. उन्हें कौतूहल हो रहा था कि आज सहाय बाबू इतने खुश क्यों दीख रहे हैं! गंभीर आदमी ... लेकिन इतना मुसकरा क्यों रहे हैं?

सहाय बाबू ने गिलास हाथ में पकड़े हुए उन्हें एक संतरा दिलवाया. उन्हें याद आया कि इसके पहले भी वे इस दुकान पर एक बार खड़े थे लेकिन तब नहीं बुलाया था. उनकी हथेली पर गोल-पीला और खूबसूरत संतरा था और वे दीन भाव से उसे देख रहे थे.

"खाओ! खाओ सुकुलजी! सस्ता भी है और मीठा भी! अच्छा बताओ, उस मीटिंग में तुम्हारे साहब भी गये रहे होंगे. क्या हुआ? बताया कुछ?" गिलास के रस को चखते हुए सहाय बाबू ने बर्फ की डली मुंह में सुड़क ली.

सीताराम ने संतरे को देखना बंद नहीं किया था. उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि कि क्या करें, क्या न करें? कहां जायें? जिस मुहब्बत और अपनेपन से यह उन्हें पेश किया गया था, उसका अर्थ उन्हें थोड़ा उलझा हुआ लग रहा था. लाख संयम के बीच उनका चेहरा हंसने और रोने के बीच हुआ जा रहा था.

"क्यों, क्या बात है?" सहाय बाबू ने फिर पूछा.

"बात कुछ नहीं, आप सही कह रहे हैं," उन्होंने छीलते हुए कहा, "बड़ा टेढ़ा होता जा रहा है सारा कुछ! दिन पर दिन बदतर हो रहा है. अब पंजाब का ही देखिए न!"

"अरे!" सहाय बाबू ने डली अंदर सरकायी और जोर से ठहाका लगाया.

सीताराम उन्हें हंसते हुए देखकर संभल गये. उन्हें अहसास हो गया था कि वे कुछ ऐसा बोल गये हैं जिसकी या तो उम्मीद नहीं थी या जो उनसे पूछा नहीं गया था. वे भी कुछ सोचते हुए हंसे और चिटकियों में संतरे के छिलके का टुकड़ा मसलने लगे.

गिलास जब आधा खाली हुआ तो सहाय बाबू ने आग्रह के साथ फलवाले से बर्फ के और चूरे डलवाये और थम-थमकर सिप करने लगे.

ऐन इसी वक्त सीताराम से एक ऐसी हरकत हो गयी जिस पर उनका बस नहीं चला. सहाय बाबू जिस समय अपने में खोये हुए कुछ सोचकर मुस्कराते हुए जीभ पर बर्फ के टुकड़े को ढुलका रहे थे, उसी समय सीताराम ने उनकी आंख के सामने औचक में छिलका दबा दिया. सहाय बाबू के संभलने के पहले ही उनके हाथ से गिलास छूटा और सुकुलजी के कमीज पतलून पर लुढ़कता हुआ नीचे गिरकर चूर-चूर हो गया.

सीताराम हतप्रभ होकर एक कदम पीछे हटे. उन्होंने थोड़ी परेशानी से सहाय बाबू को देखा. वे एक आंख से गिलास के बड़े-बड़े टुकड़े को देख रहे थे और दूसरी आंख मल रहे थे. सीताराम ने भी गुस्से से उसी टुकड़े को देखा.

"कोई बात नहीं." सहाय बाबू बुदबुदाये.

"बचपन!" सीताराम हंसने लगे, "और कुछ नहीं, बस बचपन."

सहाय बाबू अपने कपड़े झाड़ते हुए गंभीर बने रहे.

"चिंता की कोई बात नहीं." सीताराम ने फलवाले से कहा और ऊपर-नीचे, आगे-पीछे अपनी जेबें टटोलने लगे, "हो जाता है कभी-कभी."

"रहने दे, हैं पैसे." उनकी ओर देखे बगैर ही सहाय बाबू फलवाले की ओर मुड़े और हिसाब-किताब करने लगे.

सीताराम की नजर सहाय बाबू के कंधे पर गयी जहां बर्फ के कुछ चूरे रह गये थे और सहाय बाबू का ध्यान नहीं गया था. वे शीशे के टुकड़े बचाते हुए बढ़े और पीछे से उचक-उचककर उन्हें एकदम से झाड़ दिया. सहाय बाबू फलवाले से बहस में उलझे रहे.

कुछ देर तो सीताराम खड़े रहे, फिर माथे को अच्छी तरह गमछे में लपेटा और साइकिल पर बैठ गये. वे भगे क्योंकि सहाय बाबू की आवाज ऊंची होती जा रही थी.

हवा गर्म थी, सूरज सीधे मुंह के सामने था और सीताराम चले जा रहे थे. कभी पैडिल तेजी से घूमने लगता, कभी धीमे.

गली के नुक्कड़ तक पहुंचते-पहुंचते उन्हें ऐसी हंसी छूटी कि साइकिल से उतर जाना पड़ा. किसी ने चिल्लाकर उन्हें 'नमस्ते' भी की लेकिन वे पसीना पोंछते हुए हंसने में लगे रहे, 'देखो संयोग. कहीं वह गिलास मेरे हाथ में रही होती और टूट जाती...' वे हंसते-हंसते दुहरे होने लगे. उन्होंने बड़ी मुश्किल से साइकिल पकड़ी और घर की राह ली.

"पापा!" रोली दौड़ी.

मोली खिड़की के पीछे खड़ी होकर खुशी में पैर पटकने लगी. वह हाथ हिलाते हुए चिल्लाई, "पापा! टाटा! टाटा!"

सीताराम ने गौर से बच्चियों को देखा. रोली बड़ी थी और फ्राक चड्डी पहने थी. छोटी सिर्फ फ्राक पहने थी और बायें हाथ से नाक पोंछ रही थी. उन्होंने साइकिल अंदर की और सोचा, "काश! ये बच्चियां किसी और की होतीं तो उन्हें कितनी प्यारी लगतीं." दोनों बच्चियां उनके आगे-पीछे नाचती रहीं. कमरे में एकदम अंधेरा था. उन्होंने भीगी कमीज एक कोने में फेंकी, पतलून उतारी और पंखी लेकर खटिया पर बैठ गये.

अब तक दोनों बच्चियां भी उनके अगल-बगल बैठ गयी थीं और उनके अधिक से अधिक समीप होने के लिए एक-दूसरे को धकिया रही थीं. उनके गले में बाहें डालते ही मोली ने दो-तीन बार लंबी सांसें खींचीं और रोली के कान में धीरे-से बोली, "संतरा!"

"हां, पापा!" रोली ने पूछा.

"अम्मा!" मोली ने आवाज दी. शांता बगलवाले कमरे में गेहूं फटक रही थी, उसके कूंथने और सूप रखने की आहट मिली और वह पल्लू ठीक करते हुए कुर्सी पर आ बैठी.

एक साथ दोनों बच्चियां अपनी नाक सीताराम के मुंह के पास ले गयीं और उन्होंने एक-दूसरे को रहस्यपूर्ण ढंग से देखा. मोली ने रुआंसा चेहरा बनाया. वह खटिया से उतरी और लेटकर सरकते-सरकते नीचे चली गयी और रोने लगी.

"अम्मा, संतरा!" रोली भी उठकर शांता के पास आ गयी.

शांता सीताराम को देखती रही. फिर उठी, बिजली जलायी और तिपाये पर रखे पंखे को जोर से झकझोरा. डैनों में थोड़ी हरकत हुई—शुरू में उसने हड़हड़ मचाया और बाद में चल पड़ा.

सीताराम अपने सीने और मुंह पर पंखी झलते रहे. उन्होंने चारखाने का निकर ठीक किया, पांव उठाये और कुहनी के बल लेट गये. उनकी आंखें जब शांता से मिलीं तो वे मुसकरा रहे थे.

"मोली तो झूठे रोती है अम्मा!" रोली का स्वर जाने क्यों बदल गया, "पापा हमें फ्राक खरीदते हैं, कभी-कभी टाफी और लेमनचूस भी देते हैं. अभी होली के समय जूते खरीदे थे. एक दिन संतरा खा ही लिया तो क्या हो गया?"

रोली सीताराम के पास जाकर बैठ गयी और उनके छाती के बालों में उंगलियां चलाने लगी.

मोली खटिया के नीचे से बाहर आ गयी, "हां रोज-रोज चोरी से संतरा खाते हैं, कभी ककड़ी खाते हैं, एक दिन खटिया के नीचे, आम की गुठली देखी थी और उस दिन लीची की बिया. ..."

"दिमाग खराब हो गया है तुम सब का! एं, कहां है संतरा?" सीताराम बीच में ही तड़पे.

बच्चियां एकबारगी सकते में आ गयी. और अम्मा को देखने लगीं.

"मुंह तो महक रहा है." मोली ने कहा.

"झूठे मुंह महक रहा है?" वे पंखा झलने लगे.

"खाइए, खाइए विद्या कसम! अच्छा! अम्मा को मुंह सुंघाइए!" रोली भी जोश में आ गयी!

सीताराम को बेसाख्ता हंसी आ गयी.

"तुम्हें हंसी आती है, शरम नहीं आती?" शांता हिकारत से बोली और लपककर उनके हाथ से पंखे की डंडी छीन ली.

सीताराम गंभीर हो गये. उन्हें बीड़ी की तलब हुई, उठे और कमीज की जेब देखने लगे.

"अरे अम्मा!" रोली दौड़ी, "यह देखिए! संतरे के रस से भीगी हुई कमीज!" उसने कमीज के नीचे का हिस्सा फैला दिया. मोली झुक कर सूंघती हुई फिर रोने लगी.

"छिः छिः" शांता ने वहीं फर्श पर थूका, "कैसे घर चलाती हूं, यह मैं ही जानती हूं. और तुम हो कि चोरी-चोरी संतरा खाओगे, लीची खाओगे, आम खाओगे. अरे, तुम सारी शर्म-हया घोलकर पी गये हो क्या? ऐसा कहीं आदमी होता है?"

शांता माथा ठोंकती हुई बगलवाले कमरे में चली गयी और सूप फटकने लगी. वह बीच-बीच में फट-फट बंद कर देती और फिर न सुनायी पड़नेवाले स्वर में बोलने लगती.

सीताराम लेटकर चुपचाप जब बीड़ी फूंक रहे थे और उनकी आंखें छत की कड़ी पर टिकी हुई थीं, उसी समय उनका ध्यान कुछ ऐसी बातों की तरफ जाने लगा जो अजीब थीं और उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि उनके जैसे व्यक्ति की तेज निगाहों से ये कैसे छूट गयी थीं? दीवार की बात तो अपनी जगह लेकिन क्या सहाय बाबू नहीं चाहते तो गिलास गिर सकता था? उन्होंने पूरे दृश्य को फिर से अपने सामने खड़ा किया... 'उनका बुलाया जाना, उसी दीवार की ओर पेशाब करने के लिए मजबूर किया जाना (और कोई जगह भी तो नहीं थी) खुद रस पीना और उन्हें संतरा देना, एक ही गिलास को देर तक पीना और बार-बार बर्फ डल-वाना, उनसे बातें करते समय मुस्कराना और मीटिंग के बहाने बातों में फंसाये रखना, इस घटना के पहले गंभीर हो जाना ताकि उनके इरादे की ओर ध्यान ही न जाये... सोचते-सोचते वे उठ बैठे और उनकी आंखें चमक उठीं...' जब गिलास उनके हाथ में था तो उन्हीं के कपड़ों पर क्यों नहीं गिरा?

अब वे स्वस्थ थे. उन्होंने प्यार से बच्चियों की ओर देखा—रोली रूठी हुई जहां की तहां खड़ी थी और जाने किस भाव से उन्हें घूर रही थी. मोली कोने में नाक सुड़कती हुई अनेक फेंके हुए कपड़े पलट रही थी. कितनी प्यारी! कितनी भोली! आह्लाद से उनका चेहरा जगमगा उठा और मन ही मन उन्होंने सहाय बाबू ही नहीं सबकी चुनौतियां कबूल कीं!

"बेटे. इधर तो आओ." उन्होंने गंभीरता से इशारा किया. बच्चियां नंगी आंखों उन्हें ताकती रहीं.

"चिंता न करो. मैं हूं, आओ तो. तुम नहीं समझोगी लेकिन आओ." उन्होंने बीड़ी फेंक दी और दोनों की बांहें पकड़ी. खींचकर उन्हें अपनी छाती से लगाया. पहले रोली को चूमा, बाल सहलाये और उसकी नाक पकड़कर प्यार से हिलायी, "तू तो बड़ी समझदार है और ये. . ." उन्होंने दोनों को गोद में उठाया और खटिया पर आ बैठे. पहले मोली की आंखें पोंछी, 'लि लि लि लि' किया, गुदगुदाकर हंसाने की कोशिश की, "हां, बोलो क्या खाओगी तुम दोनों."

उन्होंने दोनों को अगल-बगल लिटाया और राहत महसूस की. पंखे की हवा का अहसास हुआ. उन्हें लगा कि ऐसी मुश्किल आन पड़ी है जिसका हल ढूंढ लेना बुद्धिमान से बुद्धिमान आदमी के लिए भी आसान नहीं. तब और, जब जेबें खाली हों और पत्नी भी कोई मदद करने के लिए तैयार न हो. खैर, मुसीबतें कहां नहीं हैं? वे दर्द से हंसे.

"हां बोलो, बस इतना ध्यान रखना कि कोई ऐसी चीज न मांगना जो गरमी में नुकसान करती हो." उन्होंने पिता के सच्चे दिल से कहा.

बच्चियों ने उन्हें अविश्वास से देखा. रोली जरा-सा बैठ गयी, "जैसे?"

"जैसे क्या?" वे सोचने लगे, "जैसे आइसक्रीम, सेब, संतरा, खरबूजा या जिनसे सर्दी, जुकाम और बुखार होता हो."

'मोली हंसने लगी, "तब बचा ही क्या?"

"बहुत कुछ है. सोचो! यही तो बात है."

बच्चियों ने उनके चेहरे को कुछ देर देखा और असमंजस में चुप रहीं लेकिन सोचने का सिलसिला मोली से शुरू हो गया, "ककड़ी." शुरू में रोली ने कोई उत्साह नहीं दिखाया लेकिन जाने कैसे उसके मुंह से 'खीरा' निकल गया. इसके बाद 'लिमका' पर बहस होने लगी. . . .

सीताराम ने जिस समय मुंहमांगी चीज खिलाने की बात कही थी उस समय उनका दिमाग खाली था और उन्हें लग रहा था कि बचना चाहते हुए भी वे फंस गये हैं लेकिन बहस सुनकर उन्हें आभास हुआ कि उनसे कोई बेवकूफी नहीं हुई. ठंडी हवा से निकलकर मीठी-मीठी थकान उनके बदन में अभी रेंग ही रही थी कि उन्होंने पाया—बच्चियां सारा कुछ छोड़-छाड़कर मिठाई पर सहमत हो रही हैं. उन्होंने करवट बदलने से पहले घोषणा की कि वे अलग-अलग नहीं; कोई एक चीज लायेंगे इसलिए ठीक से सोचकर-समझकर बताओ.

मिठाइयों के नाम आने शुरू हुए—पेड़ा, बर्फी, लड्डू, रसगुल्ला, जामुन, जलेबी! दोनों की रुचियां एक-दूसरे से मेल नहीं खा रही थीं. एक की नजर स्वाद पर थी और दूसरी की आकार पर. मोली 'हां' करके पहले यह जान लेना चाहती थी कि इनमें से कौन कितनी बड़ी होती है और सबसे बड़ी वाली क्या कहलाती है?

सीताराम उठकर बैठ गये और आंखें खोलकर इधर-उधर देखा. शाम घिर रही थी. उन्होंने जमुहाई ली और खुले मुंह के आगे चिटकी बजायी. उन्होंने प्यार से रोली के गाल थपथपाये और पानी मांगा. पूरा लोटा खाली करने के बाद देह तोड़ी और पसर गये. उनके बगल में लेटते हुए रोली ने चुपके से मोली की ओर ताका जो 'जलेबी' और 'इमरती' में उलझी हुई थी और पापा के चेहरे को अपनी ओर घुमाया, "पापा" वह कुछ कहने ही जा रही थी कि रुक गयी. सीताराम कान खोले और आंखे बंद किये उसके ओठों तक खिसक आये. वह बुदबुदायी, "संतरे की महक कितनी अच्छी लग रही है पापा."

सीताराम के होंठ खुले और पल भर के लिए मुस्कराहट में फैल गये—इस मुस्कान में 'जड़ा-जड़ा' दूसरे भाव भी खुद-ब-खुद मिल गये थे.

मोली को लगा कि रोली अपनी पसंद की किसी खास मिठाई के लिए पापा को फोड़ या बहका रही है. वह पूरा दम लगाकर चीखने लगी, "नहीं, बेमंची नहीं." रोली उठकर बैठ गयी. वह बार-बार कुछ कहना चाहती थी लेकिन मोली किसी भी कीमत पर कुछ सुनने को तैयार नहीं थी. रोली को गुस्सा आ गया. उसने हथेली से मोली का मुंह बंद किया और चिल्लाने लगी. मोली ने भी तैश में आकर उसकी उंगली अपने दांतों से काट ली.

अब, बहस बहस न रही, झगड़ा हो गयी. मार-पीट की नौबत आ पहुंची. चिल्ल-पों थोड़ी देर के लिए मद्धिम होती तो कहीं और से दूसरी आवाज आने लगती. उन्हें खटका हुआ. चुप होकर नीचे देखा तो पापा को खर्राटे लेते हुए पाया. उनके नथने बीच-बीच में फड़कते और वे ऐसे हंस पड़ते जैसे सपने में कोई बच्चा हंसता है.

वे दोनों घबड़ाहट में कूदकर अम्मा के पास भागीं. शांता अंगीठी जला रही थी.

"अम्मा, पापा तो सो रहे हैं." मोली ने रोनी सूरत बनाकर कहा.

शांता ने उसे धक्का मारकर परे हटाया और धुंआ उगलती अंगीठी उठाकर दरवाजे के बाहर हवा में रख दी. □

● न्यू जी- 14, अरविंद कालोनी,
काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी-5

चलते-चलते

निरालाजी के प्रति मेरे मन में श्रद्धा है, मुक्तिबोध के प्रति भी मेरे मन में आदर है. इसके बावजूद अगर दोनों की कवि के रूप में तुलना करनी पड़े तो मैं स्पष्ट कहूंगा कि निराला, मुक्तिबोध से ज्यादा बड़े कवि हैं. इसी तरह निर्मल और ज्ञानरंजन और अपने भाई काशीनाथ सिंह इनके बीच अगर मुझे निर्णय देना पड़ेगा तो मैं कहूंगा कि निर्मल वर्मा, ज्ञानरंजन और काशीनाथ दोनों से ज्यादा बड़े कहानीकार हैं. —डॉ. नामवर सिंह

जोहड़ बस्ती

रामसरूप अणखी

एक था बुटा. उसका घर जोहड़ के पास था. वहां और भी बहुत-से घर थे. गांव में उन्हें जोहड़ बस्ती पुकारा जाता था. इस जोहड़ से न तो कोई पशु-डांगर पानी पीता, और न ही यह पानी किसी और काम आता. जोहड़ में बाहर कहीं से भी जान-बूझकर पानी नहीं लाया जाता था. मेंह पड़ता और गांव के निचले इलाके का पानी बहकर इस जोहड़ में आकर इकट्ठा हो जाता. जोहड़ बस्ती का गंदा पानी भी इसी में गिरता.

गर्मी के दिनों में जोहड़ का पानी मच्छरों का घर बन जाता. पानी कम रह जाता, तो बदबू मारने लगता. बारिश

हमारा संविधान कहता है कि अब हमारे देश में ऐसा लोकतंत्र है जो सबको समानता की दृष्टि से देखता है, सबको समान रूप से शिक्षा और उन्नति के अवसर देता है . . . नागरिक की मूलभूत आवश्यकताओं को उपलब्ध कराना वह अपना दायित्व मानता है . . . मगर वे कौन से तत्व हैं जो न केवल दूसरों को समान रूप से पनपने नहीं देते बल्कि उनसे जीने का हक तक छीनने में गौरव महसूस करते हैं . . . क्या वे कानून की पकड़ में आ पा रहे हैं या कानून ही येनकेनप्रकारेण उनकी मुट्ठी में बंद हुआ जा रहा है . . . ?

के दिनों में जोहड़ एक झील का रूप ले लेता. घरों की देहरियों तक पानी पहुंच जाता, और किसी तरफ निकलने को जगह भी कोई न होती. जोहड़ बस्ती के कच्चे घर साबुत खड़े रहने की मनौतियां करते रहते.

कुल मिलाकर बस्ती में बीस-बाईस घर थे. यहां के वासी तरह-तरह के काम करते थे. पिछले समय में लगभग सभी घर जूते गांठने का धंधा करते थे, लेकिन जैसे-जैसे समय बदलता गया, काम भी बदलते गये. अब जूतों का काम चार-पांच घरों के पास ही रह गया. अधिकांश लोग खेत-मजदूरी का काम करते हैं. कुछ लोग जमींदारों के साथ 'सीरी' के रूप में भी काम करते हैं. कुछ पास से गुजरती सड़क पर मजदूर हैं. सड़क बने तो पंद्रह-बीस साल हो चुके हैं, लेकिन उसकी मरम्मत का काम सदा चलता रहता है. टूटी-उखड़ी जगहों पर बजरी-तारकोल के पैबंद लगाये जाते हैं. किनारों की मिट्टी घुल जाती है, तो खतानों में से इन किनारों को कायम रखने का ही काम चलता रहता है. और कुछ नहीं, तो चक्कर-फेरा ही, कुछ लोग दूसरे गांवों में जाकर अनेक प्रकार का छोटा-मोटा सामान बेचते हैं. वे साइकिलों पर जाते हैं. इन लोगों की गुजर इसी काम से होती रहती है. दो-तीन बंदे फेरी लगाने का धंधा भी करते हैं. शहर से सस्ते दामों पर कपड़ा ले आते हैं और फिर गांवों की गलियों में घूम-फिरकर हांक लगाते हुए बूढ़ी-जवान औरतों को यह कपड़ा बेचते हैं. सड़कें तो आम हैं. ये साइकिलों वाले पंद्रह-पंद्रह, अठारह-अठारह मील दूर तक के गांवों में भी हो आते हैं. बड़ी कठिन कमाई है इन लोगों की. औरतें गांव में ही जमींदार के घरों और लोगों के खेतों में काम करती हैं. छोटे बच्चे भी जमींदारों के खेतों में भैंसें चराने का काम करते हैं. कुछ बच्चे गांव के स्कूल में पढ़ने भी जाते हैं, प्राइमरी तक का स्कूल तो जोहड़ बस्ती के पास ही है. उससे आगे आठवीं तक का स्कूल सड़क-वाली दिशा में नया ही बना है. कुछ बच्चे वहां भी पढ़ने जाते हैं. निकट के शहर में कई हाई स्कूल हैं और दो कॉलेज भी. कुछ लड़के शहर में भी पढ़ने जाते हैं.

बूटा पांच साल का हो गया था. एक दिन दो औरतें उनके घरों में आयीं. बांहों में चमड़े के काले पर्स लटका रखे थे और एक हाथ में एक रजिस्टर भी था. उन्हें देखकर घर की बूढ़ियां-बच्चियां इकट्ठी हो गयीं. पूछने लगीं, "तुम कौन हो, भई?"

वे बोलीं, "हम मास्टरनियां, नयी ही यहां के स्कूल में बदलकर आयी हैं. इसी साल. हमें नये बच्चों के नाम लिखने हैं."

"नये बच्चे कौन-से?" एक बुढ़िया ने पूछा.

"नये, ताई, जो इस साल पैदा हुए हैं," एक नयी बहू ताली बजाकर हंस पड़ी.

मास्टरनियां नहीं हंसी. वे ऐसा करतीं तो उनकी बात हंसी में ही उड़ जाती. एक बोली, "नये बच्चे, बे जी, जो अगले साल स्कूल में दाखिल होंगे. जिनकी उमर अब पांच साल हो चुकी है."

"अमे चंद, तेरा नाम लिखने आयी हैं ये तो!" एक बुढ़िया ने अपने पास खड़े पोते से कहा.

दूसरे लड़के-लड़कियों ने सुना, तो किलकने लगे, "आहा जी! हम स्कूल जाया करेंगे. . ."

चंद उसी समय ठुमक-ठुमककर पूछने लगा, "अंबो, मुझे तख्ती ले देगी?"

बूटा भी वहीं था. उसने भी अपनी मां की ओर ताका. उसकी आंखों में भी चमक थी. चंद की दादी उसकी मां से पूछने लगी, "मुख्त्यार कौरे, बेटी बहू! बूटा भी तेरा सुख से हो गया होगा पांच साल का तो?"

"हां, अम्मा जी, इस माघ में छठा लग जायेगा. तुम्हारे बेटे ने उसी साल सीर छोड़ा था. जब पट से गिरकर टखना टूटा था उसका."

"अच्छा बेटी, जीता रहे. तुम भी लिखवा दो इसका नाम. सुख से स्कूल जाया करेगा." बुढ़िया ने प्रोत्साहन दिया. "पढ़ जायेगा. किसी नौकरी-चाकरी से लग जायेगा."

अध्यापिकाएं सभी घरों में यह भी कहती गयी थीं कि अप्रैल में स्कूल की नयी पढ़ाई शुरू होने पर वे अपने बच्चों को स्कूल छोड़ कर आयें. सरकार की तरफ से उन्हें पूरी सहूलियतें दी जायेंगी. किताबें-कापियां और तख्तियां-स्लेटें भी सरकार देगी. सर्दियों में कपड़े के फ्लीट भी दिये जायेंगे. कोई बच्चा ज्यादा ही गरीब होगा तो रेड क्रास फंड में से उसे वरदी भी सिलवा दी जायेगी. बड़ी कक्षाओं में पहुंचने पर उन्हें वजीफा भी मिलने लगेगा. वे पढ़ जायेंगे, तो किसी काम-धंधे से लग जायेंगे. उनके पिताओं की तरह उन्हें कमर तोड़ मेहनत नहीं करनी पड़ेगी. आदमी बन जायेंगे. उन्हें रहन-सहन का ढंग आ जायेगा. वे पढ़े-लिखे लोगों से बात करना सीख जायेंगे. उन्हें हिसाब-किताब की पूरी समझ आ जायेगी. लुटेरे उन्हें लूट नहीं सकेंगे. समाज में उनका आदरणीय स्थान बन जायेगा.

उस शाम जब जोहड़ बस्ती के काम-धंधे वाले पुरुष घर पहुंचे, तो बुढ़ियां उनसे अध्यापिकाओं की बातें करने लगीं. मर्द बातें भी सुन रहे थे और सोच भी रहे थे. इन बातों ने उन्हें गंभीर बना दिया था. न वे हंसते, न कुछ बोलते. बस, सुनते जा रहे थे. लड़के-लड़कियां उनकी टांगों से लिपट कर उनसे मिले थे और उन्होंने खुश होकर बताया था कि वे पढ़ने के लिए स्कूल जाया करेंगे.

बूटा कितना प्रसन्न था. वह अपने बापू से कह रहा था कि वह उसे कल ही कायदा-तख्ती ला दे. वह स्कूल जाने से पहले ही घर में बैठकर पढ़ा करेगा. पड़ोसियों के लड़के ढोलन से कायदा पढ़ लिया करेगा. ढोलन बड़े स्कूल में पढ़ता था और छठी जमात में था. मिडिल स्कूल को ही गांव में बड़ा स्कूल कहा जाता था. जबरे ने बेटे की बात पर कोई हूं-हां नहीं की.

जबरा सड़क पर मजदूरी का काम करता था. बूटा उसका इकलौता बेटा था. बूटे से बड़ी दो बेटियां थीं. दोनों मर गयी थीं. बूटे के बाद कोई बच्चा नहीं हुआ था. इसीलिए बूटा उन्हें बड़ा प्यारा था.

जिस साल बूटा पैदा हुआ था, उस साल जबरा गांव में शामसिंह नंबरदार साथ सीरी था. वे रात के वक्त गाड़ी से देसी खाद खेत में डाल रहे थे—नंबरदार का बड़ा लड़का किरपाल, एक दिहाड़िया और एक वह खुद. वे सुबह से ही काम में लगे हुए थे. आसपास की चार-पांच 'रूढ़ियां' नंबरदार ने खरीद ली थीं. दो उसकी अपनी भी थीं. चांदनी रात थी. वे सारी रात खाद डालते रहे. दिहाड़ियों को दुगुनी दिहाड़ी देनी थी. किरपाल बड़ा लालची था. बाप से भी ज्यादा कंजूस और मक्खीचूस. जबरा खाद का टोकरा उठाता और बैलगाड़ी में डालता. दिहाड़िया भी. किरपाल तो बस टोकरे भरता जाता और उठवाये जाता. उनके साथ खेत तक वह नहीं जाता था. गाड़ी पर जबरा ही बैठता. खेत में पहुंचकर दिहाड़िया सारी गाड़ी खाली कर देता. जबरा पिछली रात भी सो नहीं सका था. पिछली रात वे ट्यूब वैल का पानी लगाते रहे. नींद उसकी आंख में किरकिरी की तरह महसूस हो रही थी. कभी-कभी तो उसका सिर घूमने लगता. आंखों के आगे अंधेरा-सा छा जाता. आंखें खोलता, तो तारे-से नाचने लगते.

नंबरदार के खेत की ओर जाने वाले रास्ते में एक जगह पर नाले की ऊंची पुलिया थी. वहां से उतरते वक्त बैल दौड़ पड़ते और गाड़ी धड़कती. ऐसे समय पाटी पर संभलकर बैठना पड़ता—बैलों की नत्थें पकड़कर.

पौ फटने की बेला थी. वे गाड़ी भरकर जा रहे थे. दिहाड़ीदार आदमी गाड़ी के पीछे-पीछे चला जा रहा था. नाले की पुलिया आयी, तो चढ़ाई चढ़ते वक्त जबरे को पता ही नहीं चला. पट्टी पर बैठे-बैठे ही उसकी आंख लग गयी थी. एक झोंका-सा आया था. उसे तो पता ही नहीं चला कि बैलों को जोर लग रहा है. वे चढ़ाई चढ़ रहे हैं, इसीलिए धीरे-धीरे चल रहे हैं. ऐसे टिकाव में तो उसे सुख-सा मिलने लगा था. ज्यों ही गाड़ी पुलिया से उतरने लगी, बैल भागने लगे और जबरा पटिया से फिसलकर नीचे आ गिरा. शुकर था कि वह पहिए के नीचे नहीं आया. ऐसा होता, तो अब वह इस दुनिया में न होता. वह नीचे गिरा तो ऐन गाड़ी के बीचोंबीच—गाड़ी उसके ऊपर से निकल गयी, जैसे भगवान ने उसे हाथ देकर बचा लिया हो. दूर जाकर बैल भी जुए से निकल गये थे. उनकी जोतें टूट गयी थीं. गाड़ी की 'ठोठ' आसमान की तरफ मुंह उठाये खड़ी थी. गाड़ी उतार हो गयी थी. जबरा वहीं गिरा पड़ा था. दिहाड़िये ने भागकर उसे सहारा देकर उठाया. फिर बैलों को संभाला. जबरा चल नहीं पा रहा था. उसकी टांग टखने के पास से उतर गयी थी.

कभी कहीं जा, कभी कहीं—दो महीने तक जबरा टांग

लघुकथा

घर का आदमी

▣ राजेंद्र मेहता

कमरे में पूर्ण निस्तब्धता थी. प्रमुख अभियंता वरिष्ठ अभियंताओं को संबोधित कर रहे थे. विद्युत प्रदाय संस्थान गत कई वर्षों से घाटे में चल रहा था. मगर इस बार जो नये प्रभारी मंत्री आये थे वे शायद किसी और ही मिट्टी के बने हुए थे. उन्होंने आते ही यह जता दिया था कि वे इस स्थिति को नहीं चलने देंगे. काम करना होगा. विद्युत आपूर्ति की व्यवस्था में सुधार करना होगा. प्रशासनिक व्यय घटाने होंगे. राजस्व प्राप्ति बढ़ानी होगी. अनियमित विद्युत संबंधों को तुरंत बंद करना होगा.

इस प्रकार के निर्देशों से युक्त एक अर्द्धशासकीय पत्र भेजकर शायद उन्होंने प्रमुख अभियंता को आड़े हाथों लिया था. प्रमुख अभियंता भी तेल की धार पहचान गये थे. इसीलिए आज उन्होंने अपने सभी वरिष्ठ सहयोगियों को इस मीटिंग में बुलाया था और घंटे भर से वे गंभीरतापूर्वक सभी निर्देश उगल रहे थे. उनकी भाव भंगिमा और स्वरलहरी स्पष्ट इंगित कर रही थी कि जो अधिकारी इस सब में सुस्ती दिखायेगा उसकी खैर नहीं होगी. सभी लोग सहमे हुए थे. सभी परिवर्तित प्रशासन के तेवर समझ चुके थे.

मीटिंग समाप्त हुई और अधिकारी अपने-अपने काम में जुट गये. दूसरे ही दिन से विद्युत प्रदाय कार्यालय गोया एक अंगड़ाई लेकर उठ खड़ा हुआ था. धड़ाधड़ निरीक्षण शुरू हो गये. अनियमित मीटर कटने शुरू हो गये. बकाया राशि के बिल जारी हो गये. कार्यालयों में दैनिक मजदूरी के नाम पर शरण पाये खैनी फांकते और पीक उगलते अतिरिक्त कर्मचारियों की छंटनी शुरू हो गयी. विद्युत आपूर्ति में हुआ अप्रत्याशित सुधार जनता के लिए सुखद आश्चर्य था.

मगर. . . ! मगर कुछ लोग परेशान होने लगे. हजारों रुपये की बकाया राशि के बिल, संबंध विच्छेद के नोटिस, कर्मचारियों की छंटनी उनके लिए सिरदर्द हो रही थी. भाग-

दौड़ शुरू हो गयी थी. टेलिफोन की घंटियां खड़खड़ा रही थीं. लोग गतिशील हो गये थे.

"ट्रिग. . .ट्रिग. . . !" एक वरिष्ठ अभियंता के फोन की घंटी बजी.

"हैलो! सक्सेना स्पीकिंग."

"हां भई सक्सेना! ये आउटर जोन तुम देखते हो ना?" प्रमुख अभियंता पूछताछ कर रहे थे.

"जी हां, नमस्कार सर! क्यों, क्या बात है? फरमाइए." सक्सेना ने अभिवादन किया.

"तो ये थर्ड क्रासिंग पर जो वर्माजी रहते हैं उन्हें डिसक-नेक्शन का नोटिस क्या तुमने भिजवाया है?"

"यस सर!"

"क्यों?"

"उन्होंने मकान में आगे जो दूकान बना रखी है उसका विद्युत संबंध भी वहीं से ले रखा है. उसके लिए कमर्शियल कनेक्शन के रेट्स पर बिल भेजा व पुराना एरियर बिल भी भेजा था मगर उन्होंने पेमेंट नहीं किया, इसलिए मजबूर होकर नोटिस भेजना पड़ा."

"माई गाड! खैर अब ऐसा करो कि वो नोटिस कैंसल कर दो और उनका बिलिंग ऑडिनरी रेट से ही करो, कमर्शियल से नहीं." स्वर में आदेश था.

"मगर सर, आपने ही तो सर्कुलर भिजवाया था कि सारी बाकी बकाया राशि वसूलनी है और. . ." सहमे स्वर ने प्रतिकार का प्रयास किया.

"अरे भई, बात को समझा करो. मुझे भी पता है कि क्या कानून-कायदे हैं और मैंने क्या इंस्ट्रक्शन्स भिजवाये हैं. मगर आदमी को सब ओर देखना पड़ता है. मुझ पर भी प्रेशर आते हैं. सवेरे ही मैय्याजी का फोन आया था. इस केस के कारण बड़े नाराज थे. वर्माजी उनके खास हैं. बता रहे थे कि ये कायदे-कानून क्या घर के आदमियों पर ही लागू करने हैं." प्रमुख ने समझाया.

"मगर सर. . . !" स्वर में विवशता थी.

"मगर-वगर छोड़ो, जैसा मैंने कहा वैसा करो. अरे आम आदमी के लिए जो कायदे हैं वे घर के आदमी पर भी लागू करोगे तो बंटाधार हो जायेगा. समझे कुछ. वक्त को देखकर चलो सक्सेना बाबू!"

खट् के साथ फोन का संबंध विच्छेद हो गया था. □

● 63, मेड़तिया, सिलावटों का बाग, जोधपुर

पर पट्टियां बंधवाता रहा था. पर उसकी टांग ठीक न हुई. टखना अपनी जगह पर आया ही नहीं.

जबरे को फसल के हिस्से का उतनी चिंता नहीं थी, जितनी इस बात की थी कि वह सीर के पैसे लौटायेगा कैसे! टांग से वह बेजार हुआ बैठा था. अगले साल किसी से सीरी मिलकर, उससे सीर के पैसे लेकर ही नंबरदार के पैसे लौटा सकता था. नंबरदार ने तो उसे निर्दयी बनकर यह भी सुना दिया था कि अगर वह मौके पर सीरी के पैसे वापस नहीं करेगा, तो सारी रकम पर ब्याज भी लगना शुरू हो जायेगा.

आखिर वह शहर के अस्पताल में जाकर दाखिल हो गया. पहले तो डाक्टर उसे दाखिल करने को तैयार ही नहीं हुआ, झिड़कता रहा कि वह इतना अरसा घर में ही क्यों बैठा रहा. टांग तो गलने-गलने को हो आयी थी. लेकिन फिर तरस खाकर हाड़-विशेषज्ञ ने उसे दाखिल कर लिया था. उसकी टांग पर पलस्तर चढ़ाया था. हफ्ता-दस दिन वह अस्पताल में रहा था. फिर गांव आ गया था. वक्त आने पर जाकर पलस्तर खुलवा आया था. टांग का दर्द ठीक हो गया था. टखना जम गया था. लेकिन भारी काम करने के मामले में वह जिंदगी भर के लिए नाकारा हो गया था.

जबरा सीर छोड़कर जब से सड़क के काम में लगा था, तब से काम में चाहे उसे ज्यादा मेहनत नहीं करनी पड़ती थी, पर उसकी आमदनी बहुत घट गयी थी. घर में दाना-वाना तो सब खरीदकर लाना पड़ता था. लकड़ी-ईंधन वह भले ही सड़क के दरख्तों से तोड़ लाता, लेकिन घर के दूसरे खर्च भी तो थे. जब वह सीर का काम करता था, तब तो घर में अनाज की बोरियां भरी पड़ी रहती थीं. अब तो वे महीने के महीने गेहूं खरीदते और किसी तरह गुजर किये जाते. सीर के समय उनके घर में हमेशा गाय रहती थी—एक बार तो वह भैंस भी खरीद लाया था. जोहड़ बस्ती के कुछ ही घरों में भैंसें थीं. भैंसवाले की तो जैसे सरदारी थी. भैंसवाला घर बड़ा समझा जाता था. उस घर में सारी बरकतें थीं. उस घर की मालकिन सिर ऊंचा करके चलती.

बूटा बड़ा होता जा रहा था. खाता-पीता और कुदक्कड़ें मारता. देखकर जबरा खुश रहता. बूटा तो जैसे जबरे के लिए तीन लोक की माया था. बूटा एक सूरज था, जिसका आलोक सारे घर में जगमगाता रहता. बेटे के सहारे मां खिली हुई कपास की तरह हंसती. उस जैसा दुनिया में कोई नहीं था. पति-पत्नी, दोनों घर में बेटे बूटे की बातें करते.

वह दिनों-दिन बढ़ता-फूलता जा रहा था. उसके हाथ-पैर कितने तगड़े-मोटे थे! हाड़ों पर कितना मांस था! उसका चेहरा कितना भरा-भरा था! वह कितना चुस्त था. कितना फुरतीला! मां-बाप सपने देखते कि वह जिस दिन जवान हो गया, घर की सारी मुसीबतें दूर कर देगा. जिस दिन वह काम पर जाने लगेगा, जबरा सोचता, वह खुद सड़क का काम छोड़ देगा और घर में बैठकर सुख की सांस लेगा. बेटे के सहारे वह ऐश करेगा. उसे सारे दुख भूल जायेंगे.

एक रात जबरा बोला, "बूटा जवान हो जाये, फिर मेरे सारे काम संभाल लेगा."

"मैं तो इसे पढ़ने बिठाऊंगी. दस जमातें पास करवायेंगे. किसी अच्छे काम से लग गया, तो सारी उमर मौज करेगा."

वह हंसने लगा.

"हंसी की बात नहीं है. हम तो इसे पढ़ायेंगे. कितने लड़के पढ़ते हैं अपनी जोहड़-बस्ती के ही. कई तो दसवीं पास भी कर गये!"

"कई? कितने? सभी धक्के खाते फिरते हैं. एक को भी नौकरी नहीं मिली."

"नहीं मिली तो मिल जायेगी, दसवीं तो कर गये. जैसे दसवीं कर गये, वैसे ही नौकरी भी ले लेंगे."

जिस महीने प्राइमरी स्कूल की अध्यापिकाएं नये लड़के-लड़कियों के नाम लिखने के लिए जोहड़-बस्ती में आयी थीं, उन दिनों जबरे के घर में गेहूं का एक भी दाना नहीं था. गांव की चक्की से वह दो बार दस-दस किलो आटा मोल लेकर आया था. आटा तो बहुत महंगा पड़ता था. साथ ही हर बार आटा लाने के लिए नकद पैसे कहां से पैदा हो सकते थे? उस साल उनके पास भैंस नहीं थी, वरना भैंस के दिनों में वे दूध बेचकर गुजारा कर लेते थे. उस साल तो उनके पास एक गाय थी. थोड़ा-थोड़ा दूध दोनों वक्त दे देती. बस, चाय बन जाती. रात को थोड़ा-सा बच जाता, तो बूटा पी लेता.

जबरे के सामने और कोई रास्ता नहीं रह गया था. अब तो एक ही इलाज था कि वह किसी जमींदार के घर से 'लिखत' करके गेहूं लाये. लाने के सब ढंग-तरीकों का उसे पता था. यह भी मालूम था कि इसका क्या नतीजा निकलता है लेकिन और कोई चारा नहीं था. यह पहला मौका था जब उसे ऐसा करना पड़ रहा था. पहले तो उसका वक्त किसी तरह पूरा होता रहता था. कहीं न कहीं से कोई इंतजाम हो ही जाता था. वह सोचता तो उसे कंपकंपी-सी होने लगती. इस तरह के कर्ज का पैसा तो बड़ी मुश्किल से उतर पाता है. कर्ज का धन तो कंटीली घास की जड़ों की तरह बढ़ता-फैलता ही चला जाता है. इन जड़ों को चाहे जितना काट लो, वे पूरी कभी नहीं उखड़तीं. अपनी दोनों बहनों का ब्याह उसने कर्ज लेकर ही किया था. वह पैसा उसने बड़ी मुश्किल से चुकाया था. ज्वाला शाह दिन चढ़ते ही उसके द्वार पर छड़ी खटका देता था. सफेद कुरते, सफेद साफे और सफेद धोतीवाला ज्वाला शाह द्वार पर खड़ा जबरे को ऐसा लगता, जैसे कोई प्रेत हो, जैसे कोई यमदूत हो, जो उसकी जान लेने आया हो.

और फिर नंबरदार शाम सिंह के सीर की रकम. कितना परेशान किया था उस रकम ने! रकम ने तो क्या, नंबरदार के लड़के किरपाल ने उसे कैसे सूली पर लटकाये रखा था. किरपाल उसके घर आता तो ऊंचे स्वर में पैसों की बात करने लगता, जैसे वह सारी जोहड़ बस्ती को सुनाना चाहता हो. ऐसे वक्त में पैसों की बात भूलकर उसे किरपाल पर खीझ ज्यादा होती. कितना निर्दयी आदमी था! पैसा नहीं, जैसे जान लेनी हो. उसे अच्छी तरह याद था कि कैसे वह उनकी ताजा-ब्याई गाय को खूंटे से खोलकर ले गया था—जैसे उसने उनके बेटे के मुंह से दूध का घूंट वहीं का वहीं बाहर निकलवा लिया हो. जिस दिन नंबरदार की बही पर नामे का काटा लगा, जबरे को लगा था जैसे उसका पुनर्जन्म हुआ हो. जैसे वह एक लंबी कैद से छूटकर आया हो. और अब ज्वाला शाह और नबरदार का बेटा किरपाल उसकी आंखों के सामने प्रेतों की तरह घूम रहे थे. वैसे ही कोई तीसरा प्रेत उसको टकरानेवाला था. लेकिन वह सोचता था, वह ज्यादा बोझ नहीं उठायेगा. वह अपनी सामर्थ्य के अनुसार ही भार के नीचे सिर देगा.

करम सिंह के कोठे रामगढ़ से डेढ़-दो मील के फासले पर थे. उनका पुराना मकान गांव में था, लेकिन जब से सड़क बनी थी और मुरब्बाबंदी हो गयी थी, उन्होंने अपने खेत में ही अपना घर बना लिया था. इसी एक जगह ही उसकी चालीस 'किल्ले' जमीन का टुकड़ा काटा गया. फिर तो उसने ट्रैक्टर भी ले लिया. करम सिंह के तीन बेटे थे. तीनों पूरे कमाऊ थे. तीनों बहुएं अब बाहर ही कोठों में रहती थीं—और उनके बेटे-बच्चे भी थे. गांववाले घर में उसने एक बड़ा कमरा, एक बरामदा और दूसरी गली में खुलते द्वारवाला पूरा हिस्सा एक बैंक को दे रखा था. अंदरली गली में खुलते द्वार वाला सारा हिस्सा उसने माल-पटवारी को दे रखा था. पटवारी से वह कोई किराया नहीं लेता था. उससे सौ काम करवाने होते थे. गांव में कितने ही लोगों के साथ करम सिंह का लेन-देन चलता था. इसलिए उसे गांव का चक्कर भी लगाना पड़ता था. पटवारीवाले हिस्से में उसने एक छोटा-सा कमरा अपने उठने-बैठने के लिए अलग रख लिया था.

और कहीं कुछ होता न देख जबरा करम सिंह के कोठों की ओर चल दिया. उस दिन वह सड़क पर नहीं गया. छुट्टी

लघुकथा

एक उसका होना

▣ कमल चोपड़ा

काशीराम की शवयात्रा में शरीक होने का मौका ठाकुर साहब ने खुद ही तैयार किया था. खबर उन्हें कल शाम ही क्लीनर शामू दे गया था. लक्ष्मण गाड़ी लेकर आगे चला गया था. लक्ष्मण है ही होशियार आदमी. कितनी होशियारी और खूबसूरती से काम किया है कि. . . खैर इनाम तो देना ही पड़ेगा.

काशीराम का बाप ठाकुर साहब के बाप के खेतों पर काम करता था. बुरे वक्त पर तीन हजार रुपये देकर चार किल्ले जमीन गिरवी रक्खी थी. काशी का बाप जिंदगी भर काम करता रहा. उससे ब्याज तो पूरा होता रहा पर रकम जहां की तहां. काशीराम बड़ा हुआ तो उसने ठाकुर साहब के खेतों में काम करने से इनकार कर दिया और शहर में किसी दर्जी के पास काम करने लगा. चौधरी साहब परेशान थे कि साली जमीन तो इतनी ज्यादा हो गई है कि ऊपर से 'लेबर' मिलती नहीं. मिलती है तो परेशान करती है. सारे गांव के लड़के साइकिलों पर शहर जाकर फैक्टरियों में काम करना पसंद करने लगे हैं. ऊपर से ठाकुर साहब ने सुना कि काशीराम बड़ी तेजी

ले ली. मेट उसे इसी तरह कभी-कभी छुट्टी दे देता था. पर छुट्टी के बदले उसे मेट का कोई न कोई काम करना पड़ता.

करम सिह एक पेड़ के नीचे तख्तपोश पर बैठा था. जबरे को कोठों की ओर पगडंडी पर देखा तो पहले तो वह बड़े गौर से उसे देखता रहा और जब वह पास आया, तो करम सिह ने आंखें झुका लीं. जैसे उसे किसी के आने का पता ही न हो. जबरे ने दूर से ही भीगी-भीगी आवाज में सत्श्री अकाल बुलायी.

पास पहुंचकर जबरे ने एक बार फिर सत्श्री अकाल कहा, जैसे पहले कोई कसर रह गयी हो. इस बार करम सिह ने उसकी सत्श्री अकाल को खंखारकर स्वीकार किया और पूछा, "इधर किधर घूम रहा है रे तू?"

"बस, बाबा तुम्हारे पास ही आया हूं."

"मेरे पास! पहले तो कभी नहीं आया. कोई बात होगी, तभी आया है इतनी दूर चलकर."

"बात तो है. बात भी बता देता हूं."

"खड़ा क्यों है? इधर लकड़ी की नांद पर बैठ जा... नहीं, यह ईंट ले ले?" वह एक डबल ईंट पर बैठ गया.

"हां, अब बता."

"बताना क्या है, बाबा. घर में एक दाना नहीं है खाने को. एक बोरी गेहूं दे दो, जैसे भी हो."

"गेहूं!" करम सिह दबी-दबी-सी मुस्कान मुसकराया.

"हां—मैंने सोचा, बाबा के पास चलते हैं... वही खैर डालेगा झोली में..."

करम सिह गौर से उसकी ओर देखने लगा. और फिर सोच में डूबा-सा ही बोला, "तू परेशान मत हो जरा भी. और बता."

"बस, बाबा, बस, इतना कर दो."

"तू ऐसा कर... झिझक मत... सौ रुपये भी ले जा. जब तेरा जी चाहे, इकट्ठे लौटा देना—गेहूं के पैसे भी और सौ भी..."

जबरा सोच में पड़ गया. एक तरह से वह हल्का-हल्का भी महसूस करने लगा. सोचा—चलो, सौ भी ले चलते हैं. जहां बछड़ों का लेखा, वहां पड़वों का भी. कोई कुरता-चुन्नी बनवा लेंगे. जाने कब से सूट-सूट कर रही है मुखत्यार कौर! बूटे को भी नया कुरता ले देते हैं. मेरे पास भी सिर के लिए पगड़ी नहीं है. जमा बोदी हुई पड़ी है. सड़क पर तो महकमे की लाल पगड़ी से काम चल जाता है, कभी किसी गांव जाना पड़ जाता है, इधर-उधर भी; वहां महकमे वाली पगड़ी क्या सुंदर लगती है! उसने सौ के लिए भी सिर झुका लिया.

"अच्छा तो, दिन छिपने के साथ आऊंगा मैं गांव में. चरनी बनिये की दूकान पर लिखत कर लेंगे. बही मैं लेता आऊंगा. चरनी की दूकान से ही तुम्हें बोरी उठवा दूंगा. सौ का नोट भी वहीं ले लेना." करम सिह ने सारी बात समझा दी.

उन दिनों गेहूं का आम भाव डेढ़ सौ रुपये से कम ही था. पर करम सिह ने बताया कि वह पौने दो सौ रुपया एक क्विंटल का लेगा. सौ रुपया नकद. यह सारी लिखत वह तीन रुपयों की करेगा. दो रुपये सैंकड़ा महीने का ब्याज. यह भी बता दिया कि वह छह महीने बाद ही दुबारा उससे बात करे. ब्याज देना है, ब्याज दे दे. ब्याज समेत सारी रकम चुकानी है, तो सारी रकम चुका दे.

जबरा करम सिह की सारी शर्तें मान चुका था. उसे क्या एतराज हो सकता था? घर में आटा नहीं था. उसे तो खाने के लिए रोटी चाहिए थी—कहीं से भी मिले, कैसे भी मिले. करम सिह की हर बात पर वह हुंकारा भरता रहा.

बूटा तीन जमातें पास कर चुका था. अब वह चौथी जमात में दाखिल हो गया था. मगर इन तीन सालों में जबरे ने करम सिह का एक भी पैसा नहीं चुकाया था. छह महीने बाद करम सिह हिसाब करता. ब्याज के पैसे लगने से रकम बढ़ जाती. जबरा चुपचाप अंगूठा लगा देता. हिसाब करते वक्त करम सिह हौले से कह देता, "जबर सियां, ब्याज की रकम तो चुका दिया कर. असल रकम जब भी आये चुका देना."

जबरा बड़े कमजोर-से हौसले से जवाब देता, "रकम तो अब सरदारजी, जब भी लौटायेंगे, इकट्टी ही लौटायेंगे. बस, दांतों में जीभ है. सब उतार देंगे."

वह बहुत कोशिश करता कि करम सिह का पैसा किसी न किसी तरह लौटा दिया जाये. पैसा तो बढ़ता ही जा रहा था. एक दिन ऐसा भी आ जायेगा जब इतनी रकम लौटाने के बारे में वह सोच भी नहीं सकेगा. उसे अच्छी-खासी खबर थी कि करम सिह जान-बूझकर रकम बढ़ा रहा है. ब्याज लौटाने की बात कहकर तो वह यों ही व्यंग्य किया करता है. यही लूटने-खाने के ढंग होते हैं इन लोगों के. ज्वाला शाह और करम सिह में रत्ती भर फर्क नहीं है. तीन सालों में रकम दुगुनी हो गयी थी. ब्याज लगता और अगली बार पहली रकम में गिन ली जाती. इस बढ़ती हुई रकम का गम जबरे के हाड़ों को घुन की तरह खा रहा था.

इस बार आषाढ़ी पर हिसाब करने के लिए करम सिह ने जबरे को चरनी की दूकान पर बुलवाया. हिसाब करने से पहले ही वह खुद भी तीन बार जबरे के घर हो आया था. वह एक बार भी नहीं मिला था. मुख्तियारो ही जवाब-सवाल करती. कहती, "वह खुद ही आ जायेगा जी, आप के पास. जब लिये हैं, तो खरे दूध की तरह देंगे भी. जो देना है वह तो देना ही है. रब के सामने जान रखनी है." करम सिह ताड़ कर कहता, "इस बार हिसाब से ही बात नहीं बनेगी. इस बार थोड़ा-बहुत देना भी पड़ेगा. कुछ तो हाथ-पल्ला झाड़ो."

मुख्तियारो देखती, हर बार उसकी निगाह उनके घर में खड़ी तीसरी बार ब्याई गाय की तरफ उठ जाती थी.

करम सिह पहले तो उसका हाल-चाल पूछने लगा. जबरा देहरी के बाहर ही पैरों के भार बैठा हुआ था. करम सिह बही की डोरी खोलने लगा, तो चरनी ने जबरे से देहरी के अंदर आ कर बैठने को कहा.

बही खोलकर करम सिह ने चरनी के सामने रख दी और बोली, "लो भई सेठ, पिछला हिसाब बता दो इसको. अब तक का पूरा टोटर करके. शक न रह जाये कोई."

उसकी बात में चालाकी थी, जिसे जबरा समझता भी था और नहीं भी समझता था. लेकिन उसे रकम तो देनी ही थी. दिये बगैर फांस निकलने वाली नहीं थी. चरनी ने हिसाब किया और ठोक-बजाकर बताया कि ब्याज सहित अब तक कुल नामा छह सौ रुपये बनता है. जबरे का मुंह खुले का खुला रह गया—जैसे चरनी झूठ-मूठ कह रहा हो. वह हैरान हुआ कि रकम थोड़े ही दिनों में दुगुनी हो गयी है. उसे यह तो याद नहीं था कि ये थोड़े दिनों तीन साल का लंबा अरसा थे. उस साल बूटा पहली जमात में दाखिल हुआ था, अब वह चौथी में आ गया था.

करम सिह ने इस चोट पर साफ-खरी बात भी जड़ दी, "ले भई, सुन ले मेरी बात. एक ही सुनाये देता हूं. सौ हाथ रस्सी, सिरे पर गांठ. या तो सारी छह सौ की रकम चार दिनों के अंदर-अंदर चुका दे, वरना पांचवें दिन तेरी गाय की रस्सी ले जाऊंगा. तेरी गाय सौ से एक पैसा ऊपर की नहीं है. यह बैठा है चरनीमल, सेठ!"

जबरा कान खुजाने लगा. उसने अपना माथा पोंछा. माथे पर ठंडा पसीना था.

करम सिह और चरनी, दोनों लगातार उसकी तरफ झांके जा रहे थे. करम सिह की निगाह तीखे तीर की तरह जबरे के रोएं-रोएं को बींध रही थी. खड़े होते हुए उसने मुर्दा आवाज में जवाब दिया, "कोई बात नहीं, मैं मुख्तियारो के साथ सलाह कर लूं. सुबह मैं आपके घर आऊंगा."

"घर कहां? मैं तो कोठे में रहूंगा. गांव में नहीं रहता आज मैं. मैं तो अभी चलनेवाला हूं." करम सिह ने कहा.

"कोठे भी कौन दूर हैं. ये खड़े हैं कोठे! वहां आ जाऊंगा मैं." जबरा वहां से भागने को उतावला था.

"जो भी कर! एक ही बात थी, तुझ से कह दी!" करम सिह ने बही को कंधे वाले समोसे में लपेट लिया और दूकान से निकलकर वह जबरे के साथ ही हो लिया. रास्ते में वे छोटी-छोटी बातें करते चलते रहे.

● व्यंग्यचित्र : अनिलकुमार अंकुर

से पैसे कमा रहा है और जल्दी ही ठाकुर साहब से हिसाब चुकता कर अपनी जमीन छुड़वा लेगा. नहीं... ऐसे कैसे दे दूंगा... चार किल्ले आज लाख रुपये के हैं. तीन हजार में तेईस-चौबीस हजार ब्याज के मिलाकर भी बनेगा क्या...? इसी बात को लेकर कल सुबह बड़े परेशान थे ठाकुर साहब. लक्ष्मण ने बात सुनी तो बोला, "ठाकुर साहब, अपना ट्रक किस दिन काम आयेगा...? वह साला काशीराम रोजाना रात देर से साइकिल पर घर लौटता है. सुनसान सड़क पर अंधेरे में साइकिल समेत ट्रक के नीचे दे दूंगा साले को... और महीने दो महीने में ही साले की घरवाली आप के बरतन मांज रही होगी और उसके चौदह और तेरह साल के लड़के आप के खेतों पर काम कर रहे होंगे... ना पैसे जुड़ पायेंगे और ना जमीन छोड़नी पड़ेगी... एक ही झटके में कई कारज सिद्ध..."

यही मौका है. काशीराम के अंतिम संस्कार में पहुंचकर अपने मेहरबान और खैरख्वाह होने का सबूत दिया जाये.

ठाकुर साहब वहां पहुंचे तो काशीराम के लड़कों ने मुंह बिचका दिया. वहां उपस्थित छोटे-छोटे लोगों ने ठाकुर साहब को कोई महत्व नहीं दिया. अपने आप पर काबू रख वे काशीराम की घरवाली के पास पहुंचे और धीरज बंधाते हुये बोले, "हिम्मत रखो... मेरे होते तुम्हें किस बात की चिंता है?"

काशीराम की घरवाली एकाएक रोते-रोते चुप हो गयी और बोली, "ठाकुर साहब... एक तुम्हारे होने की ही तो चिंता है..." □

● 1600/114, त्रिनगर दिल्ली-110035

ग़ज़ल

◘ कैलाश सेंगर

आग ही आग बरसती है अब की बारिश में,
आंख पानी को तरसती है अब की बारिश में.

अब तो सूरज भी यहां छुप के निकल जाता है,
धूप की मांग सुबकती है अब की बारिश में.

खुदकशी कर ली यहां तक हरे पत्ते ने,
फिर भी वह डाल चहकती है अब की बारिश में.

कैसी दलदल है धंसा जाता है लम्हा, लम्हा,
अपनी पहचान खिसकती है अब की बारिश में.

हाय, मौसम ने चुरा ली है तड़प और चमक,
बिजली छुप-छुपके सिसकती है अब की बारिश में.

एक बादल जो मेरे जैसा है, रोता है वहां,
फिर भी वह छत क्यों वहकती है अब की बारिश में.

पिछली बारिश में एक बूंद मिली थी मुझ से,
प्यास की रूह भटकती है अब की बारिश में.

"लड़का भी तेरा अब सुख से गभरू है," मड़भूजन की मट्ठी के पास रोककर करम सिंह ने जबरे से कहा.

"हां, चौथी में पढ़ता है." जबरे को हैरानी हुई कि ब्याज के पैसों की बात करते-करते करम सिंह बीच में उसके बेटे की बात कैसे ले बैठा.

"हां, वह तो कृपा है बाघरू (वाह गुरु) की!" जबरा जैसे अपनी बात से दूर जा रहा हो.

"ढोर चराने लायक तो वह, सुख से, हो गया दिखता है. . . या एक और काम कर."

"क्या?"

"उसे पाली मिला दे मेरे साथ. हमारा पाली भाग गया है. चल, ऐसा कर ले. आगे से छह सौ पर ब्याज नहीं लेते. जब जी में आये, यह छह सौ लौटा देना. तब तक लड़के को मेरे पास रहने दे. दोनों वक्त की रोटी, हर छमाही लीड़ा-लत्ता भी दूंगा. . . चल, यों कर ले."

"वह तो, करम सियां, पढ़ता है. चौथी में है. मैं सोचता हूं. . . पढ़ जाये. दस कर ले. किसी लायक हो जायेगा."

"छोड़ इस बात को! हमारे बच्चे किसी दफ्तर में तो बैठने से रहे! यही अंधेरा ढोना है हमें तो जबर सियां! छोड़ यह पढ़ाई-वढ़ाई. किसने उलटी मति दे दी तुझे!"

"वह. . . तुम्हारी बात तो ठीक है, करम सियां. . .पर क्या है. . ."

"ठीक है, तू अपनी देख. वैसा कर ले या ऐसा कर ले. लेकिन निपटा दे. इधर या उधर. अच्छा, सुबह मैं तेरी राह देखूंगा फिर. . ."

वे अलग हो गये.

जबरा और मुख्तियारो सारी रात सोचते रहे कि कैसे किया जाये. गाय दे दी जाये या बूटे को पाली लगा दिया जाये. बूटा उनके पास ही गहरी नींद सो रहा था. जब भी बूटे को पाली शामिल करने की बात छिड़ती, तो दोनों जीव झुकते और उसके मुंह की तरफ हसरत भरी निगाहों से ताकने लगते. दोनों के कलेजे से एक हूक-सी निकल उठती. एक धुंआ-सा उनके अंदर से उठता और बूटे की आने वाली जिंदगी में अंधकार छा गया नजर आता.

बूटे को घर में रखकर गाय की रस्सी खुलवा देने से दूध के ठूठे में लात लगनी थी. चाय के गिलास के लिए भी तरसना पड़ता. खरीदकर लाया गया दूध तो निरा पानी होता है. गाय के पीछे जो बछड़ा था, दो सालों मैं तो उसे ही कितनी कीमत का होकर बिकना था.

जबरा गिनती-बिनती-सी करता रहा. सात सालों में लड़का दसवां पास करेगा. फिर कोई कोर्स-वोर्स करवाना पड़ेगा. क्या पता कोर्स में दाखिला मिले, न मिले. कोर्स कर भी लिया, तो फिर नौकरी मिलेगी, इसका क्या भरोसा? अनेक लोग पढ़ाई करके घर में बैठे हुए हैं. हर आदमी को नौकरी भी कहां मिलती है! सिफारिश का जमाना है. वह सोच रहा था कि सात-आठ साल तो बड़ा लंबा अरसा है. तब तक तो एक युग बीत जायेगा. तब तक तो वह खुद भी बीत जायेगा. वह तो अब भी बीता-बीता-सा रहता है. सात-आठ साल किसने देखे हैं? बेटा गभरू होने को आ रहा है, तो उसे किसी काम में डालना ही ठीक रहेगा. उसके लिए बड़े लंबे धीरज की जरूरत है. बड़ा मजबूत इरादा चाहिए उसके लिए. इतना लंबा इंतजार कौन कर सकेगा? जबरा और मुख्तियारो फैसला-सा करने लगते कि बूटे को ही स्कूल से हटा लिया जाये और करम सिंह की भैंसों क पाली बनाकर उसे उसके कोठों में भेज दिया जाये. अभी से काम पर लग जायेगा, तो आगे के लिए काम की आदत पड़ेगी. लड़का शुरू से ही कामा हो, तो जवान होने पर पूरा करिंदा बनता है.

लेकिन उसके मन का कोई सपना उनके फैसले को मोड़ दे जाता. बिजली की चमक जैसी एक चौंध उसकी आंखों के सामने आ जाती. जोहड़-बस्ती के दूसरे लड़के कैसे स्कूलों में आगे बढ़ते जा रहे थे. कोई आठवीं में, कोई दसवीं में पढ़ता था. लड़के नौकरियों पर भी लगे हुए थे. कुछेक को लगने की उम्मीद थी. नौकरी का कितना सुख होता है. मेंह हो, अंधड़ हो, बंधी तनखाह जेब में आ जाती है. कितना शाही ठाठ है. पढ़ाई से तो आदमी का जीवन सुधर जाता है. कमियों-कमीनों के लड़के तो एक तरह का सरदारी जीवन व्यतीत करने लगते हैं. पढ़े-लिखों की बात ही और होती है. उनके मजे ही कुछ और होते हैं. लेकिन जबरे के बेटे की किस्मत में यह सरदारी-जीवन कहां? उसका बाप नरक भोगते मर गया. उसने खुद सारी उमर नरक भोगा. और अब उसका बूटा. . .

दूसरे दिन बड़े तड़के ही बूटे को साथ लेकर जबरा घर से चल तो पड़ा, लेकिन उसकी ठुस-ठुस को देखकर उसका अपना मन भी गिरने-गिरने को हो रहा था. बूटे का चेहरा लटका हुआ था. उसकी आंखें डूबी हुई नजर आती थीं. वह धीरे-धीरे चल रहा था. पांच-सात कदम चलने के बाद जबरा उसे अपने साथ मिला लेता, पर वह फिर पीछे रह जाता.

अपने साथ चलाने के लिए और तेज कदम उठाने के लिए वह कभी-कभी उसे गालियां भी देता. खीज उठता. पर कभी पुचकारता भी. "बेटे. . . बेटे. . ."कहने लगता.

जबरा सोचता—अभी उसकी उमर ही क्या है. ढोर चराने की उम्र तो अभी हुई नहीं. बहुत छोटा है अभी तो यह! कितना मासूम चेहरा है! नन्हें-नन्हे हाथ-पांव, पतली बांहें और टांगें. पौधे-सी नाजुक जिंदगी. इस वक्त अपना बेटा उसे बड़ा कमजोर लग रहा था. वह सोचता, कहां छोटी-सी जान को कांटों की बाड़ में झोंक रहा है. कैसे बरदाश्त करेगा यह जेठ-अषाढ़ की धूप!

बैसाख-जेठ की रुत थी. जबरा बूटे को करम सिंह के कोठे पर छोड़ने जा रहा था. उसे रुपया चुकाना था. इस रकम के सूद के बदले अब बूटे को करम सिंह की भैंसें चरानी थीं. कम से कम छह महीनों तक तो चरानी ही थीं और फिर भी अगर ब्याज का पैसा उतर न सका, तो यह भैंसें चराने का सिलसिला जाने कब तक चलने वाला था.

अब तो बूटे को यही काम करना था. सुबह से शाम तक. करम सिंह के खेतों में ही. अन्य छोटे-मोटे काम भी करने थे. रात को सोना भी कोठों में ही था. रोटी-टुक्कड़ सब वहीं. आठवें-दसवें रोज गांव का चक्कर लगा सकेगा—वह भी कुछ पलों के लिए.

जबरा नहर की पुलिया तक आ पहुंचा. पीछे आ रहे बूटे को हांक लगाकर वह पुल के एक छोर पर बैठ गया. जब बूटा पास आया, तो उसने अपने पास बिठा लिया. उसके कंधे पर बांह रखकर उसने उसे अपनी बगल में भींच लिया.

"लगाया करोगे भैंसों के चक्कर?"

'हां' में बूटे ने सिर ही हिलाया. मुंह तो जैसे उसका सिला हुआ था.

"मां को याद करोगे?" पर साथ ही जबरे ने सोचा, यह भी कोई पूछनेवाली बात है. बूटा भी जबरे की तरफ जरा-सा झांकने लगा, जैसे कह रहा हो—यह किस तरह का सवाल है, बापू?

"अरे! तू पढ़कर ही खुश है?" जबरा जैसे नींद से चौंकता हुआ-सा बोला.

लड़के की आंखों में जैसे चमक आ गयी. चेहरा जैसे बारिश से नहाये फूल की तरह निखर आया हो. उसके सहपाठी, गिंदरी, ढूंडा और पाखर कितने चाव से पढ़ रहे थे. वह तो उन तीनों से ज्यादा होशियार था. वह हट गया, तो जमात में उन तीनों की सरदारी हो जायेगी. चौथी का मानीटर अब उन तीनों में से ही कोई बनेगा—नहीं तो वह मानीटर बन सकता था. उसी को बनना था. वह काफी होशियार निकल आया था. बहनजी सवाल बोलती ही रह जातीं और वह सबसे पहले हल कर के ले आता. रेडियो की खबरों की तरह पंजाबी पढ़ता. कितनी बढ़िया लिखाई थी उसकी!

जबरे को महसूस हुआ, छह सौ रुपया लौटाना बड़ा कठिन है. गाय दी होती, तो फिर से ले पाना मुश्किल होता. बेटे को काममें न डाला, तो आगे खर्च कौन चलायेगा? सात-आठ साल कहां पड़े हैं? उससे पहले-पहले तो यह पूरा सीरी बन चुका होगा. घर में अनाज आने लगेगा. जबरे के मन में एक सुनहरी किरण जागी. उसने सोच लिया कि वह एक साल के बाद बूटे को किसी अन्य जमींदार के साथ पाली मिला देगा. उस जमींदार से पैसे लेकर वह करम सिंह के छह सौ रुपये की फांस काट डालेगा. कुछ पैसे नये जमींदार से और कुछ का इंतजाम वह खुद करेगा. इस तरह वह धीरे-धीरे अपना भार हलका कर लेगा. तब तक बूटा सीरी बनने लायक हो जायेगा. फिर तो वह घर का सारा भार उठा लेगा.

"हमारे लिए विद्या कहां, भाई! चल उठ!" जबरे ने लंबी सांस ली.

बूटे की आंखें डूब गयीं. गर्दन झुकाये वह अपने बाप के पीछे-पीछे हो लिया. करम सिंह के कोठे सामने ही नजर आ रहे थे. बाप-बेटा सिर झुकाये चले जा रहे थे. □

● **कच्चा कालेज रोड, बरनाला-148101**

चलते-चलते

मार्क ट्वेन तथा विलियम स्विटन नये-नये पत्रकार बने थे. एक बार उन्हें तीन डालर की सख्त जरूरत पड़ी. स्विटन ने कहा, "भगवान देगा."

मार्क ट्वेन एक होटल के द्वार पर चिंतित मुद्रा में टहल रहे थे कि एक छोटा-सा चंचल कुत्ता आकर उनके पांवों में खेलने लगा. वहीं जनरल माइल्स कहीं से घूमते आ पहुंचे. कुत्ते को देख वे बड़े खुश हुए और पूछा, "कुत्ता बेचना चाहते हो?"

मार्क ट्वेन ने कहा, "तीन डालर निकालिये, कुत्ता आपका हो जायेगा."

जनरल माइल्स ने तीन डालर दिये और कुत्ता साथ लेकर चले गये.

थोड़ी देर बाद कुत्ते का असली मालिक कुत्ते के विषय में पूछताछ करने लगा. मार्क ट्वेन ने सुझाव दिया, "एक शर्त पर कुत्ता ढूंढ़ सकता हूं कि कुत्ता मिल जाने पर तीन डालर पुरस्कार स्वरूप देने होंगे." मालिक राजी हो गया.

मार्क ट्वेन जनरल माइल्स के पास गये और तीन डालर लौटाकर कुत्ते को ले आये. फिर कुत्ते के मालिक को कुत्ता सौंपकर तीन डालर का इनाम ले लिया. □

—जितेंद्र कुमार गौड़

मूल्यों की उलटफेर

तुलसीदास चंदन घिसैं

▣ हरिशंकर परसाई

राष्ट्र की, आपकी, हमारी और यहां तक कि आम आदमी की आज की प्राथमिक आवश्यकता जानते हैं क्या है—टेलीविजन! इसीलिए बहुत शीघ्र एक पूरे वर्ष को टेलीविजन वर्ष के रूप में घोषित किया जायेगा. . . और उस वर्ष में आपसे जो-जो अपेक्षाएं की जायेंगी प्रस्तुत हैं उनकी एक बानगी.

गरज कि काट दिए गर्मी के दिन दोस्त,
वो कूलर के साथ हों या कूलर की याद में.

'फिराक' का एक शेर है—

गरज कि काट दिए जिंदगी के दिन ए दोस्त,
वो तेरी याद में हों या तुझे भुलाने में.

हम 'प्राविंशल' लोग कहलाते हैं. कूलर मामूली चीज है मगर एक 'प्राविंशल' के लिए विशिष्ट है. इससे आराम कम मिलता है, प्रतिष्ठा ज्यादा. एक बार दिल्ली में फोन पर टाइम का नंबर डायल किया था. उधर सुरीली नारी आवाज आयी—टाइम इज टेन मिनिट्स पास्ट फाइव. मैं इतना गद्गद हुआ कि बोल उठा—थैंक यू. मेरे पास बैठे दो दोस्त हंसे और बोले—अरे यार, 'प्राविंशल' हो. वहां तुम्हारा 'थैंक यू' सुनने को कोई सुंदरी नहीं बैठी है. डिस्क है.

मैं झेंपा नहीं. मैं जानता था, ये जो हंस रहे हैं, ये भी उत्तरप्रदेश के गांवों के किसानों या गरीब पुरोहितों के लड़के हैं. आटा-दाल गांव से लाकर ये इलाहाबाद और बनारस में पढ़े. तब दिल्ली के दरवाजे नौकरियों के लिए खुले थे. ये दिल्ली अच्छी नौकरियों पर आ गये. गांव में तो पूरा गांव घर था. दिल्ली में फ्लैट पूरी दुनिया थी. गांव में बाहर निकलते थे तो हर मिलनेवाले से दुआ-सलाम, जैरामजी की होती थी. दिल्ली में दिन भर कनाट प्लेस में खड़े रहें तो भी एक भी नमस्ते करनेवाला नहीं मिलता था. तब के इनके लेखन में जो एकाकीपन और निर्वासन था, वह पश्चिम की नकल था, यह कुछ हद तक सही है. लेकिन एक बड़ा कारण यह भी था—गांव से आकर महानगर में बस जाना. यों पूंजीवादी व्यवस्था में निर्वासन अनिवार्य अभिशाप है. इन्होंने न जाने कितने हास्यास्पद अटपटे काम किये होंगे खास दिल्ली की नजरों में. ये टू वे ट्रैफिक सड़क पार करते हुए दोनों तरफ देखते थे, डबल डेकर (बस) का नाम सुनकर उसे अंगरेजी फिल्म समझते थे, छुरी-कांटे का उपयोग नहीं आता था, टी पॉट के साथ रखे 'शुगरक्यूब्स' को मिठाई समझकर खा जाते थे और फिर बेअरा से शक्कर मांगते थे. यह सब इन्होंने किया और इतने वर्षों बाद अब दिल्ली वाले बन गये. मगर दिल्ली की ही राजनीति के बारे में जब मैं इन्हें बताता, तो ये चौंक जाते थे. दिल्लीवाले को दिल्ली के बारे में सबसे कम जानकारी होती है.

बहरहाल, बात मैं कर रहा था अपने कूलर की. अब जब बरसात हो रही है और ठंडा ही ठंडा है, तब ये दो हफ्ते की मरम्मत की छुट्टी से लौटे हैं. इसके पहले जब तापमान 44 तक था, ये दस दिन की मरम्मत की छुट्टी पर जा चुके हैं. इनकी मोटर पंद्रह मिनिट तक 'सुर-सुर' करती, तब पंखा चलता. एक दिन इनके भीतर के बिजली के तार जल गये. इनमें डाला आधा पानी बाहर आ जाता है, जिसमें बिजली का करेंट होता है. सारा परिवार इस पानी से दूर रहता है. इनके फेफड़े खराब हो गये हैं. ये अब पानी फेंकते हैं, हवा नहीं. चौथे साल ये मृत्यु को प्राप्त हो गये, हालांकि दिल की बीमारी इन्हें दूसरे साल ही शुरू हो गयी थी.

घोर गर्मी में जब ये मरम्मत कराने गये थे, मैं सिर पर गीला नेपकिन रखे बैठा रहता था.

मित्रों ने कहा—हम समझ गये जिंदगी बनाने का हर मौका छोड़ने की तुम्हारी आदत है. मगर नया कूलर क्यों नहीं खरीद लेते?

मैंने कहा—अब वह दो हजार में मिलता है. मैंने चार साल पहले कूलर चौदह सौ में खरीदा था.

मित्रों ने कहा—अभी तुम्हें पुरस्कार मिले हैं. पैसा काफी है, तो तुम कंजूसी पर उतर आये हो. जब पैसा कम था, तब एकदम कूलर खरीद लिया था.

मैंने कहा—प्यारे, यही महाजनी चरित्र है. अभी लंदन में पश्चिम के प्रांत महाजन देशों के नेता इकट्ठे हुए थे. इनमें दो छोटे महाजनों—फ्रांस और इटली—के दिल में गरीब और विकासशील देशों के लिए दर्द उठ पड़ा. उन्होंने कहा-गरीब देशों को कर्ज पर ब्याज दर हमें कम कर देना चाहिये और वसूली में सख्ती नहीं बरतनी चाहिये. मगर अमरीकी राष्ट्रपति रोनाल्ड रेगन ने कहा—हम न ब्याज दर में कमी करेंगे और न वसूली में रियायत करेंगे. जो गरीब देश हैं लेकिन कर्ज से अपेक्षित विकास नहीं कर रहे हैं, उनके साथ रियायत करने का कोई सवाल नहीं. जो विकास कर रहे हैं (जैसे भारत) वे तो ब्याज देने में समर्थ हैं.

इस नीति का मतलब है—गरीब पर अविकसित तथा गरीब पर विकासशील दोनों प्रकार के देशों को कर्ज और ब्याज से बांधे रहो. इससे मूलधन भी बढ़ेगा और ब्याज से कमाई भी होगी. मेरी आर्थिक नीति अब अमरीकी लाइन पर है. मूलधन से खर्च मत करो. यहां-वहां से ब्याज बटोरो. 1978 में मुझे एकाएक बोध कराया गया था, कि कूलर मेरी प्राथमिकता है. कूलर के बिना मेरा लिखना-पढ़ना हो नहीं सकता. यह बोध मुझे विज्ञापनों, परिवारजनों और मित्रों ने कराया. मुहल्ले में तीन परिवारों में कूलर थे. कूलर मेरी आत्मा में बैठ गया. मैंने कलम रख दी. अब कूलर आ जायेगा, तभी लिखना संभव होगा. पैसे बैंक में बहुत नहीं थे, इसलिए झट से खरीद लिया. अब पैसे ज्यादा हो गये हैं तो इसी जर्जर कूलर को सुधरवाते खींच रहे हैं. सोचता हूं—यह गर्मी कटी जा रही है. अगले साल नया लेंगे.

कूलर की बात मैंने विस्तार से इसलिये बतायी कि कैसे जरूरत पैदा की जाती है किसी चीज की कि वह प्रतिष्ठा की निशानी बन जाती है. सफलता की साधक बना दी जाती है और उसके बिना आदमी अपने आप को धिक्कारता है. उपभोक्ता इसी तरह बनाये जाते हैं और कुछ लोग तो आज की संस्कृति को उपभोक्ता संस्कृति ही कहते हैं. मैं जानता हूं कि विज्ञान और तकनीक से सारे सुभीते मनुष्य को मिलना चाहिये. मगर झंझट प्राथमिकता की है.

एक क्षेत्र के नेताओं से दिल्ली में पूछा गया कि आपके क्षेत्र में या तो रेडियो स्टेशन खुल सकता है या हैवी इलेक्ट्रिकल कारखाना, आप कोई एक ले लीजिये. नेताओं ने सोच-विचार के बाद कहा कि साब, रेडियो स्टेशन खोल दीजिये. अब देखिये—हैवी इलेक्ट्रिक कारखाना खुलता तो हजारों लोगों को काम मिलता, आसपास कई छोटे उद्योग खुल जाते, पूरे क्षेत्र का विकास हो जाता और आम आदमी खुशहाल हो जाता. मगर नेताओं ने सोचा होगा कि रेडियो स्टेशन खुलना प्रतिष्ठा की बात होगी. हम जनता में शान से कह सकेंगे कि लो तुम्हारे यहां भी रेडियो खुलवा दिया. हमारी लोकप्रियता बढ़ेगी और हमें वोट मिलते जायेंगे. मेरा खयाल है कि नेताओं को चौराहे पर खड़ा करके खूब जूते मारना चाहिये थे कि तुमने क्षेत्र का विकास नहीं होने दिया. पर प्रचार इतना विकट है कि आम आदमी को भी यह गर्व अनुभव होने लगा कि हमारे शहर में ही रेडियो है.

यह मूल्यों की उलटफेर है, सुनियोजित प्रचार है, अनावश्यक को अनिवार्य बनाने की मानसिकता तैयार करने की तरकीब है, यह बहुत अद्भुत है.

इंदौर के मेरे एक पत्रकार मित्र ने बताया कि शहर से कुछ किलोमीटर दूर एक गांव में पानी के अभाव की विकट समस्या थी. इसके समाचार छपते थे. एक दिन कलेक्टर ने हम दो-तीन पत्रकारों से कहा—चलिये, उस गांव को हो आयें. हम वहां पहुंचे. गांव के लोग एक जगह एकत्र हुये. उन्हें बताया गया कि कलेक्टर साहब और बड़े-बड़े अखबारवाले आये हैं. कलेक्टर ने पूछा—आप लोगों की क्या जरूरत है. आपको क्या चाहिये. दो-तीन सयाने आदमी खड़े हुए और कहा कि हुजूर इंदौर में टेलीविजन आ गया, हमारे गांव में भी टेलीविजन खुलवा दीजिए. किसी ने पानी की समस्या की बात नहीं की. कलेक्टर ने खुद पानी की समस्या उठाई और उन्हें बताया कि पानी की पूर्ति का ऐसा इंतजाम हम कर रहे हैं.

इधर मेरे शहर में बहुत जल्दी एंटीना का संघर्ष चलने वाला है. दस बारह लाख के इस शहर की सड़कों का यह हाल है—सावधानी से लोग न चलते तो आधे आदमी अभी तक लंगड़े हो जाते. सिर्फ आठ किलोमीटर दूर नर्मदा नदी है मगर मार्च के महीने से जल संकट शुरू हो जाता है. कीचड़ पीते हैं. आधी रात से गरीब औरतें घड़ा लेकर सार्वजनिक नल के आसपास बैठ जाती हैं. इन पर छोटे-मोटे आंदोलन हुए हैं. अखबारों में भी हर साल छपता रहता है. लेकिन पिछले साल भर से टेलीविजन का संघर्ष युद्ध स्तर पर चल रहा है. ऐसा वातावरण बनाया गया है कि लोग भूल गये हैं कि पिछले दो महीने में दाल दो रुपया किलो अधिक महंगी हो गयी है. वे पूछते हैं—अपने यहां टेलीविजन कब तक आयेगा.

इस शहर का आदमी ग्लानि से मरा जा रहा है कि भोपाल, इंदौर और रायपुर में टेलीविजन खुल गया, हमारे महान शहर में अभी तक नहीं खुला. जुलूस महंगाई के खिलाफ भी

निकलते हैं. लेकिन कोई अगर टेलीविजन के लिए जुलूस निकालने की पुकार लगाये तो इतिहास का सबसे बड़ा जुलूस निकल जायेगा. लोग गुस्से में उपद्रव करेंगे तो पुलिस की गोली से दो-चार सौ आदमी खुशी से मर जायेंगे. वे अमर शहीद होंगे. झोपड़ीवाला भी टेलीविजन की बात करता है, बंगला वाला भी.

मुझसे मिलनेवाले लोग कहते हैं–यहां टेलीविजन क्यों नहीं खुल रहा है, आप इस बारे में कुछ लिखिये ना. अखबारों में ऐसे शीर्षकों के नीचे टेली-विजन की मांग करते हुए नागरिकों के पत्र छपते हैं–जबलपुर के साथ अन्याय क्यों? जबलपुर से सौतेला व्यवहार? आखिर टी. वी. कब तक खुलेगा? जबलपुर ने क्या बिगाड़ा है? नगर के नेता वर्ग को धिक्कार!

खूब सघन प्रचार से टेलीविजन का वातावरण बनाया जा रहा है. कभी खबर छपी कि ट्रांसमिशन टॉवर आ गया. दूसरे दिन से लोग अखबारों में चिल्लाने लगे कि टॉवर खड़ा क्यों नहीं किया जाता है?

दो-तीन साल पहले एक अधिकारी यह अनुमान लगाने आये थे कि इस शहर में टेलीविजन की सफलता की कितनी संभावना है. वे मुझसे मिलने भी आये. मैंने उनसे कहा–आप बेखटके टेलीविजन खोल दीजिए. सारे शहर में एंटीना दिखेंगे. आप मेरे घर के पास की सड़क से आगे बढ़ते जाइये दोनों तरफ रहनेवाले दस परिवारों में से छः परिवार दो नंबरी पैसेवाले हैं—चाहे सरकारी नौकरी में हों चाहे धंधा करते हों. कुछ मुहकमों का तो क्लर्क भी शाम को जेब में से सौ रुपये निकालकर रखता है. पास में अरबों की लागत की योजना चालू है और यह आम जानकारी है कि वहां की आधी सीमेंट और लोहे से शहर में इमारतें बन रही हैं.

अब इस शहर के मध्यम वर्ग में एंटीना की लड़ाई होने वाली है बल्कि शुरू हो चुकी है. मुहल्ले में अमुक-अमुक के घर पर दूर से ही एंटीना दिखता है. एक यह अपना घर है कि इसमें घुसो तो शर्म आती है. इस ग्लानि से वह मध्यवर्गीय मारा जायेगा, जिसे ऊपरी आमदनी नहीं है. इसमें खासकर अध्यापक लोग होंगे. बच्चे मां के पीछे पड़ेंगे और मां अपने पति से कहेगी कि बच्चे दूसरे के घर टी.वी. देखने जाते हैं तो बड़ी शर्म आती है. तुम भी ले आओ ना. घर का मालिक कहेगा—भाई वे लोग घूस खाते हैं तो उनके पास पैसा है. मैं तो घूस नहीं खाता. उनकी पत्नी कहेगी—तुम्हारी ईमानदारी को क्या चाटें कि बच्चों के लिये टेलीविजन सैट नहीं ला सकते. क्या फायदा ऐसी ईमानदारी से! बच्चे कहेंगे—बाबूजी, आपने हमारे लिए कुछ नहीं किया. हमको तो अब दोस्तों से मिलने में शर्म आती है. उनके सबके यहां टी.वी. आ गया है. बच्चे बहुत चतुर हो गये हैं. वे कहते हैं—भोपाल से आपके मित्र पांडेजी आये थे ना, उनका लड़का कह रहा था कि बाबूजी कहते हैं कि टी. वी. से मेरा भी बहुत ज्ञान बढ़ा है. लड़का बाप को फुसला रहा है कि तुम अपना ज्ञान बढ़ाने के लिये टी. वी. लाओ.

इस कदर अनिवार्यता और प्रतिष्ठा की निशानी और जीवन का एकमात्र मूल्य बना दिया गया है टेलीविजन कि मुझे लगता है कि शहर में जो कुछ ईमानदार बचे हैं, वे भी भ्रष्टाचारी हो जायेंगे और टी.वी. रखेंगे. अगर ऐसा नहीं करेंगे तो हीनता की भावना व घरवालों के ताने से मर जायेंगे.

आगे का एक साल टेलीविजन साल होगा. गेहूं, चावल के दाम दुगने हो जायें, पीने को पानी न मिले, डकैती हो, स्त्रियों की इज्जत लूटी जाये, कोई विरोध प्रकट नहीं करेगा. सबकी मानसिकता पर टेली-विजन छाया रहेगा. मैं यह नहीं कहता कि विज्ञान तकनीक का लाभ हमें नहीं उठाना चाहिये. जरूर उठाना चाहिये. यह सभ्यता और संस्कृति की आवश्यकता है. पर कब उठाना चाहिये—बुनियादी बनने के बाद यह सब होना चाहिये या बुनियाद कोई न हो और हमें ट्रांसमिशन टॉवर से लटक जाना चाहिये? यों पश्चिम के समाजशास्त्रियों का यह मत बनने लगा है कि टेलीविजन के असीमित उपयोग से सामाजिक संबंध टूट रहे हैं. यहां भी ऐसा होगा. जो लोग शाम को बाहर निकलते हैं, लोगों से मिलते हैं, मित्रों के साथ बैठते हैं, वे टेलीविजन के पर्दे से चिपक जायेंगे व संबंध ढीले होते जायेंगे. □

● व्यंग्यचित्र : अशोक श्रीश्रीमाल

समय

रमेश उपाध्याय

किसी देश के किसी शहर में एक आदमी घड़ी देखकर समय बताने की नौकरी करता था. वह उस देश के सर्वोच्च जनप्रतिनिधि का निजी सहायक था और उसका काम था जनप्रतिनिधि के दिन भर के कार्यक्रम के अनुसार समय-समय पर उसे बताते रहना कि अब उसे कहां जाना है या क्या करना है.

जनप्रतिनिधि चूंकि अत्यंत महत्त्वपूर्ण व्यक्ति था, उसे अत्यंत महत्त्वपूर्ण काम करने पड़ते थे. रोज उसे बहुत-से लोगों से मिलना होता था, जो अपनी मांगें, शिकायतें, शुभकामनाएं, कृतज्ञताएं आदि लेकर उसके पास आया करते. रोज ही कहीं उसे कानून बनाने जाना होता, तो कहीं व्यवस्था करने. कहीं न्याय करने जाना होता, तो कहीं नीतियां निर्धारित करने. कहीं पर उद्घाटन करने जाना होता, तो कहीं पर भाषण करने. कहीं पर चाय पीने जाना होता, तो कहीं पर खाना खाने.

उस देश का रिवाज था कि वहां के लोग हर काम के लिए एक समय निश्चित करते और उस काम को उसी समय पर करते. चाहे कोई कितना ही महत्त्वपूर्ण व्यक्ति क्यों न हो, वे किसी के लिए इंतजार नहीं करते थे. अगर कोई जनप्रतिनिधि समय का पाबंद न होता, तो वे उसे हटाकर दूसरा प्रतिनिधि चुन लेते थे.

जनप्रतिनिधि इस रिवाज को अच्छी तरह जानता था और मानता था कि दुनिया का कोई काम किसी के बिना रुकता नहीं है. इसलिए वह समय की पाबंदी पर बड़ा जोर देता. वह अपने भाषणों में अक्सर कहा करता, 'अब समय आ गया है कि हमें देश के विकास में तुरंत जुट जाना चाहिए.' या 'अब समय आ गया है कि हमें अपने देश से गरीबी फौरन मिटा देनी चाहिए.' मगर उस देश पर न जाने कैसा संकट आया हुआ था कि वहां कोई भी काम समय पर न हो पाता. यहां तक कि सर्वोच्च जनप्रतिनिधि भी समय के अनुसार न चल पाता. वह समय पर कानून न बनाता, समय पर व्यवस्था न करता. समय पर न्याय न करता, समय पर नीतियां निर्धारित न करता. समय पर उद्घाटन न करता, समय पर भाषण करने न पहुंचता. समय पर चाय पीने न पहुंचता, समय पर खाना खाने न जा पाता.

लेकिन समय की पाबंदी से संबंधित अपने देश के रिवाज और लोगों के मिजाज को वह अच्छी तरह जानता था. इसलिए समय पर काम न कर पाने के लिए वह हमेशा ही कोई न कोई उम्दा बहाना खोज लेता और जनता में यह विश्वास बनाये रखता कि वह खुद तो समय का बड़ा ही पाबंद है, लेकिन आजकल समय ही कुछ खराब चल रहा है. मगर बहाने कोई कब तक बना सकता है. लोग असंतुष्ट होने लगे. यह देखकर वह घबराया और एक दिन उसने घोषणा की, "मेरे प्यारे लोगो, अब तुम चिंता मत करो. चूंकि मुझे रोज बहुत सारे काम करने पड़ते हैं और सब कामों को याद रख पाना कठिन होता है, इसलिए मैंने घड़ी देखकर समय बतानेवाले एक बेहतरीन आदमी को अपनी सहायता के लिए रख लिया है. उस आदमी के पास कलाई-घड़ी है, जो बिल्कुल ठीक समय देती है. वह आदमी खुद समय का इतना पाबंद है कि लोग उसे 'मिस्टर राइट टाइम' कहते हैं. दुनिया भर की घड़ियां गलत हो सकती हैं, पर उस आदमी की घड़ी कभी गलत नहीं हो सकती. उसकी इस ख्याति से प्रभावित होकर मैंने उसे तुम लोगों की सेवा में नियुक्त किया है. मुझे पूरी उम्मीद है कि अब तुम लोगों की सारी शिकायतें दूर हो जायेंगी. समय आ गया है कि अब हम अपने सारे काम समय पर निपटायें, और इस प्रयास में हमें तुरंत जुट जाना चाहिए."

उस देश में लोग इस घोषणा से बहुत खुश हुए. पूरे देश में न सही, कम से कम उस शहर में, जिसमें जनप्रतिनिधि

वाले उस आदमी को जानते थे. उन्होंने उस आदमी को बधाइयां दी तथा दूसरों को उसके बारे में बताकर उसका खूब प्रचार किया.

वह आदमी सचमुच समय का बड़ा पाबंद था. देश के सर्वोच्च जनप्रतिनिधि का निजी-सहायक बनकर तो वह अपनी भारी जिम्मेदारी के प्रति और भी ज्यादा सचेत रहने लगा. वह जनप्रतिनिधि के दिन भर के कार्यक्रम को ठीक-ठीक याद रखता और ज्यों ही किसी काम का समय होने लगता, तुरंत उसे बताता, "श्रीमान, अब आपको अमुक काम करना है."

लेकिन शुरू से ही उस आदमी ने देखा कि जनप्रतिनिधि अपने ही कार्यक्रम का उल्लंघन किया करता है. कायदा यह था कि जनप्रतिनिधि से मिलने के लिए हर खासोआम को समय लेना पड़ता था और कोई भी व्यक्ति उसे निर्धारित समय पर ही मिल सकता था. लेकिन कुछ खास लोग समय लिये बिना ही उससे मिलने आ जाते. समय लेकर आये हुए आम लोग बाहर बैठे प्रतीक्षा करते रह जाते और खास लोग अपनी बारी के बिना ही सीधे अंदर चले जाते.

इससे आम लोगों में असंतोष फैलना स्वाभाविक था और जनप्रतिनिधि उनके असंतोष से डरता था, क्योंकि वे समय की पाबंदी का खयाल न रखने के कारण उसे उसके पद से हटा सकते थे. इसलिए जब एक दिन कुछ खास लोग उससे समय लिये बिना मिलने आये तो उसने समय बतानेवाले निजी सहायक को बुलाया और कहा, "बाहर जो आम लोग बैठे हुए हैं, उनसे कह दो कि उनसे मिलने का समय अभी नहीं हुआ है."

"लेकिन समय तो हो चुका है श्रीमान!" उस आदमी ने आपत्ति की.

"फिर भी कह दो, वे तुम्हारी बात पर अविश्वास नहीं करेंगे."

"मगर उनके पास भी घड़ियां हैं श्रीमान!"

"होंगी, पर सब जानते हैं कि तुम्हारी घड़ी कभी गलत नहीं होती. जाओ, कह दो."

"पर मेरी घड़ी में भी समय हो चुका है श्रीमान! मैं उन्हें कैसे यकीन दिलाऊंगा?"

उस आदमी को जिरह करते देख जनप्रतिनिधि को गुस्सा आ गया. बोला, "मैंने तुम्हें अपनी सहायता के लिए रखा है या उन लोगों की सहायता के लिए? नौकरी करनी है तो तुमको मेरा आदेश मानना होगा. वे लोग अगर तुम्हारी घड़ी देखकर ही विश्वास करेंगे, तो ऐसा करो कि सुइयां घुमाकर अपनी खड़ी समय से थोड़ा पीछे कर लो."

उस आदमी को बुरा तो बहुत लगा, लेकिन उसने सोचा, इनके हाथ में अधिकार है, क्या पता, मुझे नौकरी से निकाल ही दें. तब मेरा और मेरे बाल-बच्चों का क्या होगा?

यह सोचकर उस आदमी ने अपनी घड़ी का समय पीछे कर लिया और बाहर प्रतीक्षा करते हुए आम लोगों नहीं आया है. लोग उस आदमी पर विश्वास करते थे, उन्होंने विश्वास कर लिया.

जनप्रतिनिधि को अपने द्वारा ईजाद किया गया यह तरीका बहुत पसंद आया. अब तो वह हमेशा खास लोगों से ही मिलता. उन्हीं के लिए कानून बनाने और व्यवस्था करने जाता. उन्हीं के साथ न्याय करने और उन्हीं के हित की नीतियां बनाने जाता. उन्हीं के साथ चाय पीने और खाना खाने जाता. आम लोगों को वह यह कहकर टरका देता कि उनसे मिलने का समय निकल चुका है, या अभी उनसे मिलने का समय हुआ ही नहीं है. उन्हें विश्वास दिलाने के लिए वह उस आदमी की घड़ी कभी आगे, कभी पीछे करा देता.

खास लोग भी अपना उल्लू सीधा होते और आम लोगों को यों बेवकूफ बनते देख बहुत खुश थे. वे लेन-देन का धंधा करनेवाले लोग थे. लेने में जल्दी और देने में देर करने से उन्हें फायदा होता था, लेकिन समय का बंधन होने के कारण उन्हें कई बार नुकसान उठाना पड़ता था. जनप्रतिनिधि को

किसी देश के किसी शहर में......

इस शीर्षक योजना के अंतर्गत कथाकार रमेश उपाध्याय आजकल कथा में अभिव्यक्ति की संभावनाओं का जायजा ले रहे हैं. 16 अप्रैल 84 से प्रारंभ इस शृंखला के तहत पिछले अंको में आप क्रमशः 'बोझ', 'रोशनी', 'हवा', 'मिट्टी' और 'आग' पांच कहानियां पढ़ चुके हैं. इसी क्रम में प्रस्तुत है छठी कहानी—

अपनी मर्जी के मुताबिक समय को आगे-पीछे करते देख एक दिन उनके दिमाग में एक योजना आयी और योजना बनाकर उन्होंने जनप्रतिनिधि से कहा, "श्रीमान, एक ऐसा कानून बना दीजिए कि समय सब लोगों की मर्जी के मुताबिक चलने लगे."

"ऐसा कैसे हो सकता है श्रीमानो!" जनप्रतिनिधि ने कहा, "समय तो एक प्राकृतिक नियम है जो सब पर समान रूप से लागू होता है. दफ्तर के समय में थोड़ी-बहुत हेराफेरी की जा सकती है, लेकिन पूरे देश और सारी दुनिया के समय में हस्तक्षेप कैसे किया जा सकता है?"

"दुनिया की बात जाने दीजिए, लेकिन हर देश का अपना विधि-विधान अलग हो सकता है श्रीमान! आप कानून बना दें तो सबको मानना ही पड़ेगा."

"लेकिन मैं जनमत जाने बिना कोई नया कानून नहीं बना सकता."

"तो आप जनमत जान लीजिए." खास लोगों ने अपनी योजना के अनुसार हंसकर कहा.

जनप्रतिनिधि ने खास लोगों की बात मान ली और देश में जनमत संग्रह कराया कि लोग अपने समय को स्वेच्छा

उस देश में लेनदार कम थे, देनदार ज्यादा. देनदारों ने सोचा, 'कितना अच्छा हो कि देने का समय कभी आये ही नहीं, या अधिक से अधिक देर में आया करे, और लेने का समय जल्दी से जल्दी आये.' सो जनमत यह रहा कि समय को सबकी मर्जी के मुताबिक चलना चाहिए. और यह कानून बन गया कि देश के लोग लेन-देन का समय स्वेच्छा से आगे-पीछे कर सकते हैं.

मगर उस कानून का बनना था कि देश में अव्यवस्था फैल गयी. लेनदारों ने अपनी घड़ियां घुमाकर आगे कर ली और वसूली करने जा पहुंचे. उधर देनदारों ने अपनी घड़ियां घुमाकर पीछे कर ली और कहने लगे कि देनदारी का समय अभी हुआ ही नहीं. नतीजा यह हुआ कि दोनों के बीच झगड़े-फसाद होने लगे. सारे देश में मार-काट मच गयी.

उस मार-काट में जब आम लोगों के साथ-साथ कुछ खास लोग भी मरे, तो खास लोग दौड़े-दौड़े जनप्रतिनिधि के पास गये और शिकायत की, "देश में बड़ी अव्यवस्था फैल रही है श्रीमान, व्यवस्था कीजिए."

"श्रीमानो, मैंने तो पहले ही समझाया था कि समय को हम अपनी मर्जी के मुताबिक नहीं चला सकते. अब मैं क्या व्यवस्था कर सकता हूं?"

"कुछ ऐसी व्यवस्था कीजिए श्रीमान, कि लेनदार तो जब चाहें अपनी वसूली कर सकें, पर देनदार देते समय आनाकानी न कर सकें."

"पर यह तो अन्याय होगा श्रीमानो! लोग क्या कहेंगे? उन्होंने मुझे न्याय करने के लिए इस सर्वोच्च पद पर बिठाया है. अन्याय करूंगा तो वे मुझे मेरे पद से हटा देंगे."

"हम आपसे अन्याय करने के लिए नहीं कह रहे हैं

ग़ज़ल

▣ एस. एम. ज़मा 'शफ़क़'

हमको खिजा ने, तुमको संवारा बहार ने,
अच्छा किया सुलूक गमे रोजगार ने.

अब आये हैं वो हुस्ने चमन को संवारने,
जब जख्मे दिल को ताजगी बख्शी बहार ने.

बेकद्र हो गया मैं जमाने की नजर में,
ठुकरा दिया है जब से मुझे मेरे यार ने.

तसकीने-दिल के वास्ते मैं सिजदारेज था,
काफिर समझ के मारा गुले-लाला जार ने.

हद है शफक के मेरे दिले सादा लौह को,
बहका दिया है उनकी नजर के खुमार ने.

जुज एक निगाहे-शौक कभी उम्रभर शफक
की और आरजू न दिले-बेकरार ने.

श्रीमान! आप न्याय अवश्य करें, पर हम लोगों के साथ करें, जैसा कि आज तक करते आये हैं. आपको अपना हिस्सा अवश्य मिलेगा."

"मगर कोई तरीका तो बताइए कि लोगों को मेरे न्याय पर विश्वास बना रहे."

"तरीका हमने सोच रखा है श्रीमान! अपना-अपना न्याय मांगने के लिए लेनदार और देनदार दोनों ही आपके पास आयेंगे. आप लेनदारों की घड़ियों को सही और देनदारों की घड़ियों को गलत बतायें. फैसले के लिए मिस्टर राइट टाइम की घड़ी को आगे-पीछे करा दें."

"लेकिन सुना है, लोग आजकल उसकी घड़ी के समय पर भी संदेह करने लगे हैं."

"उसकी चिंता आप न कीजिए. हम उसका और उसकी घड़ी का ऐसा प्रचार करेंगे कि लोगों को उस पर पूरा भरोसा हो जायेगा."

लेकिन वह आदमी मनमाने समय का कानून बन जाने के बाद से खुद बहुत परेशान था. वह कई लोगों का देनदार था और उसके लेनदार फौरन वसूली करने पर आमादा थे. उसने अपनी घड़ी का समय पीछे खिसकाकर अपने लेनदारों को टरकाने की बहुत कोशिश की, लेकिन वे टरकने को तैयार न थे. कहते, "इस घड़ी से तुम आम लोगों को ही बेवकूफ बना सकते हो, हमें नहीं."

तभी एक दिन उसने देखा कि शहर की तमाम दीवारों पर एक पोस्टर लगा हुआ है, जिसमें उसका और उसकी घड़ी का चित्र छपा हुआ है और नीचे लिखा हुआ है—'देश भर में सबसे सही चलनेवाली घड़ी! समय संबंधी तमाम विवादों का फैसला श्रीमान जनप्रतिनिधि मिस्टर राइट टाइम की इसी घड़ी के समय के आधार पर करेंगे.' पत्र-पत्रिकाओं में भी यही विज्ञापन छपा हुआ था. रेडियो-टेलीविजन से भी यही विज्ञापन प्रसारित हो रहा था.

वह आदमी बड़ा खुश हुआ और अपने लेनदारों के चंगुल से छूट जाने की आशा में खुशी-खुशी दफ्तर गया. जनप्रतिनिधि ने उस दिन समय-संबंधी झगड़ों का निपटारा करने के लिए विशेष अदालत लगायी और उस आदमी की घड़ी के आधार पर लोगों के साथ न्याय किया.

शाम को वह आदमी अपने लेनदारों के पास गया और बोला, "अब तो आपको मेरी घड़ी पर विश्वास हो गया होगा? अब मेरा पिंड छोड़ दीजिए. मेरी घड़ी के मुताबिक देनदारी का समय अभी नहीं आया है."

"जाओ-जाओ, किसी और को बेवकूफ बनाना!" उसके लेनदार बोले, "हम तुम्हारी घड़ी की सारी असलियत जानते हैं. क्या तुमने आज हमें जनप्रतिनिधि की विशेष अदालत में नहीं देखा? वहां तुम्हारी घड़ी के अनुसार सारे फैसले किसके पक्ष में हुए थे? हम तो तुमसे अपनी वसूली करके रहेंगे. गड़बड़ करोगे तो तुमको भी जनप्रतिनिधि की अदालत में पकड़ ले जायेंगे."

विशेष अदालत में क्या होगा, वह आदमी समझ गया. धोखा खाये हुए आदमी की तरह दुखी होकर वह अपने

घर लौट आया. बीवी और बच्चों के सामने उसने जनप्रतिनिधि को खूब गालियां दीं. उससे भी ज्यादा अपने-आपको. लेकिन अब क्या हो सकता था?

रोज की तरह वह घड़ी उतारकर रख रहा था कि अचानक उसे घड़ी पर ही गुस्सा आ गया. वह उससे कहने लगा, "तू ही है सारी खुराफात की जड़! तू न होती तो मैं क्यों इस लफड़े में पड़ता? अब मैं उन लेनदारों से लड़ूं भी तो किस बूते पर? तेरे सहारे एक भ्रष्ट और कमजोर आदमी ने मुझे भी भ्रष्ट और कमजोर बना दिया. अरे, तू कितनी बेशरम है! मेरे साथ इतनी हेराफेरी की गयी और तूने एक बार भी विरोध नहीं किया. टिक-टिक चलती ही रही. मैं तो बाल-बच्चोंवाला आदमी था, अपनी नौकरी से बंधा हुआ था, पर तू कम्बख्त किससे बंधी हुई थी? खराब हो जाती, बंद हो जाती, चलने से इनकार कर देती, तेरा कोई क्या बिगाड़ लेता? मैंने तुझसे कितनी उम्मीदें बांधी थी कि तू मुझे लेनदारों की वसूली से बचा लेगी? देश भर में तेरा प्रचार और गुणगान हो रहा है, पर तू है किस काम की?"

कहते-कहते उसने बड़ी नफरत और आत्मग्लानी के साथ अपनी घड़ी को फर्श पर दे मारा.

उसके बीवी-बच्चे बोल उठे, "हैं-हैं, यह क्या? घड़ी ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?"

"सचमुच! घड़ी ने क्या बिगाड़ा है?" उस आदमी ने सोचा और उसका गुस्सा उतरने लगा. दरअसल, वह अपनी घड़ी से बहुत प्यार करता था. पुरानी होने पर आज भी पहले जैसी खूबसूरत थी. काले फीते में बंधा शुद्ध सोने का-सा आभूषण. सुनहरा केस, सुनहरा डायल, सुनहरी सुइयां, और उस अनथक जीवन-साथी के संग जुड़ी हुई हजारों समृतियां. जीवन-साथी ही नहीं, वह जीवनदायिनी भी थी, क्योंकि उसी के सहारे वह और उसका परिवार भी जी रहा था. सहसा उसके मन में घड़ी के प्रति बहुत-सा स्नेह उमड़ आया और उसने घड़ी को उठा लिया.

मगर वह बंद हो चुकी थी. टिक-टिक खामोश हो चुकी थी. सेकेंड की हमेशा चलती दिखायी देनेवाली सुई भी अहिल खड़ी थी.

अपनी घड़ी की यह हालत देखकर उस आदमी को रोना आ गया. उसने चुपचाप घड़ी को जेब में रखा और घड़ीसाज के पास चल दिया.

घड़ीसाज ने घड़ी देखी और कहा, "इसका बैलेंस बिगड़ गया है साहब, लेकिन ठीक हो जायेगी."

उस आदमी की जान में जान आयी और वह घड़ी को ठीक कराने बैठ गया.

घड़ीसाज ने घड़ी को खोलकर उसके पुरजों को देखते हुए कहा, "घड़ी तो बहुत बढ़िया है साहब! क्या कहीं गिर गयी थी?"

"हां भाई, गिर ही गयी थी." उस आदमी ने कहा. □

● बी-3/4 राणाप्रताप बाग, दिल्ली-110007

लघुकथा

स्टैंडर्ड

▣ अमर कोमल

कैप्टन साहब अपनी कोठी के लॉन में टहल रहे थे. हाथ पीछे, झुकी गर्दन और सोच में मगन. अचानक सिपाही ने सामने आकर सैल्यूट किया व प्रार्थना की, "साहब! मैं खाना खा आऊं?"

"हूं." कैप्टन साहब ने अपनी सोच में डूबे हुए ही 'हूं' कहकर स्वीकृति दे दी. सिपाही ने सैल्यूट किया और लौट चला.

अभी सिपाही थोड़ी दूर ही गया था कि कैप्टन साहब एकाएक चौंक पड़े. जाते हुए सिपाही को जोर से वापस आने का आदेश दिया. सिपाही पलटकर पास आया. "तूने क्या बोला था?" कैप्टन साहब ने उस से पूछा.

"साहब! मैंने बोला कि मैं खाना खा आऊं!"

"नहीं, तुम खाना नहीं खा सकता. तुम सिपाही लोग हो. तुम खाना नहीं खाते. खाना तो साहब लोग खाता है. तुम कुछ और बोलो."

सिपाही समझ गया और थोड़ी देर बाद सैल्यूट मारकर फिर बोला, "साहब! मैं परशादा छक आऊं?"

"हूं." कैप्टन साहब ने गंभीर होकर कहा और उसके जाने के लिए सिर हिलाया. सिपाही चल दिया.

लेकिन अभी सिपाही थोड़ी दूर ही गया था कि कैप्टन साहब ने उसे फिर लौटने का आदेश दिया.

"तूने क्या बोला?" कैप्टन गरजा.

"साहब, मैं बोला था, मैं परशादा छक आऊं!" सिपाही ने विनम्र भाव से कहा.

"नहीं, तुम परशादा नहीं छक सकता. परशादा तो भाईजी लोग छकते हैं! तुम कुछ और बोलो!" कैप्टन साहब का हुक्म था.

सिपाही दुविधा में था. घबराकर इधर-उधर देखने लगा.

कैप्टन साहब की गरजती आवाज फिर सुनायी दी, "जवान, तुम कुछ और बोलो!"

"जी-जी, सा'ब!...फिर मैं रोटी खा आऊं?" सिपाही ने सैल्यूट मारकर घबराते हुए कहा.

"हां, हां! सिपाही लोग रोटी खाता है." आखिर कैप्टन साहब ने सिपाही को रोटी खाने की अनुमति दे दी. उनके चेहरे पर अब संतुष्टता का भाव था! □

पंजाबी से अनुवाद : फूलचंद मानव

चुनाव चक्र और एकता

▣ मथुरादास

चुनाव की खारिश जोरों पर है... मगर सबका अपना-अपना ढंग है खुजाने का ...किसी के खुजाने से खाज मिटती है तो किसी से औरों को लगती है...कौन कैसे खुजा रहा है, किसे खुजा रहा है...और क्यों खुजा रहा है... बयान कर रहे हैं मथुरादास.

मथुरादास की डायरी

चुनाव की सुहानी बयार बहने लगी है. मौसम बदलता है तो खाल पर नचुनी होने लगती है यानी खारिश-सी होती है. खारिश का मजा खुद खारिश है. खारिश की दवा कर लो तो सारा मजा जाता रहता है. चुनाव में यही होता है. खारिश होती है और विरोधी दल बगलें खुजाते हैं. कभी-कभी एक-दूसरे को भी खुजाते हैं. खुजानेवाला अगर जगजीवन राम हुआ तो वह अपनी खाज न तो खुद खुजाता है न दूसरे को खुजाने देता है. किसी वीराने में पेड़ के तने पर पीठ रगड़ता है. अगर अटलबिहारी बाजपेयी हुआ तो अपनी खारिश पर तो दवा चुपड़ता है और दूसरों की खाज पर नाखून. हेमवतीनंदन बहुगुणा खुजाते अपनी बगल हैं और चाहते हैं मजा दूसरे को आये.

राजनारायण विचित्र चीज हैं. वे तो आपकी पीठ पर खजोहूण रगड़ देंगे फिर घी की कटोरी के लिए भाग-दौड़ शुरू कर देंगे.

चौधरी चरण सिंह को खुद खुजली कभी नहीं होती. वे खुद दूसरों को हो जाते हैं. इसके बाद वे चाहते हैं कि लोग खुजाएं उनकी ही पीठ, अपनी पीठ भगवान भरोसे छोड़ दें.

तो भाई, चुनाव तो आ गया और चुनाव की खारिश भी जोरों पर है. अब सवाल यह है कि अगर विरोधी दलों में एका न हुआ तो इंदिरा गांधी चुनाव जीत जायेंगी. और वे चुनाव जीत गयीं तो खाज का सारा सूखा मिट्टी हो जायेगा.

हमें उम्मीद थी कि एका अब हो ही जायेगा. राजनारायण के सुधर जाने के बाद इसमें कसर ही क्या रह गयी थी? मगर लगता है बिगड़े हुए अकेले राजनारायण ही नहीं थे. विरोधी दल का हर नेता एक किस्म का राजनारायण था.

बहुत दिन सोच-विचार हुआ. बहुत लोगों ने बहुत-सा सोच-विचार किया. इस सारे सोच-विचार के बाद सारे लोग एक बहुत बुद्धिमत्तापूर्ण और अहम नतीजे को निकालने में कामयाब हो गये—विरोधी दलों के बीच एका होना चाहिए.

यह देश सचमुच बहुत महान है. बड़े-बड़े ऋषि-मुनि और ज्ञानी यहां हुए हैं. उन्होंने छोटे-छोटे सूत्रों में बड़े-बड़े दर्शन की बातें कही हैं. उनकी परंपरा अब और आगे बढ़ चुकी है यह विश्वास हमें हो गया. सांख्यकार ने सौ-दो सौ सूत्रों में आत्मा, परमात्मा और सृष्टि का रहस्य लिखा. विरोधी दलों के कणादों ने एक सूत्र में भारत का भविष्य लिख दिया—एका होना चाहिए.

कणाद ऋषि फलसफा लिखते थे और खेत में गिरे दाने चुनकर खाते थे. विरोधी दलों के नेता भी कणाद हैं. दाने चुगते हैं. दाने पड़े मिल जायें चुग लेंगे. खुद खेत कभी नहीं बोयेंगे. हल चलाना हो तो हल हाथ से थामेंगे, मूठ खेत में रगड़ेंगे और कहेंगे अधिनायकवाद किसानों का दुश्मन है. इसलिए वे खेत अपना नहीं बोते. बोये हुए खेत में उतरते हैं. और दाना चुगकर उड़ने लगते हैं. दाना उन्होंने चुग लिया. अब उड़ रहे हैं. उड़ रहे हैं और देख रहे हैं इधर-उधर कहीं चुनाव का कोई सूराग मिले

तो सूत्र मिल गया—एका होना चाहिए.

एका नहीं होगा तो चुनाव में हार जाएंगे. चुनाव में हार जाने पर बड़ा नुकसान होता है. जनता का नहीं अपना. जनता राजनारायण के बिना काम चला लेगी लेकिन चौधरी का काम कुर्सी के बिना नहीं चलता. इसीलिए एका होना चाहिए.

अब सवाल है कि एका हो कैसे? इसके लिए सभी बुद्धिमान विरोधी दलों के विद्वान नेताओं का गंभीर विचार-विमर्श हुआ और फिर एक सूत्र निकला: एका मुद्दों पर होना चाहिए.

यह बड़े पते की बात है. एकता मुद्दों पर ही होनी चाहिए. पर मुद्दे कौन से? मथुरादास का सुझाव है कि मुद्दा भी एक ही होना चाहिए—अध्यक्षता.

इस सूत्र से विरोधी नेता भारी कसरत करते हैं. इस एक सूत्र के भाष्य पर ही दस पार्टियों के बीस दल बन जाते हैं और फिर नये सिरे से एकता-वार्त्ता शुरू होती है.

अपनी पूरी मासूमियत के साथ यह मुद्दा उठाया जाता है और अध्यक्षता के लिए दूसरों को कुएं में धकेलकर जबर्दस्ती कुर्सी पर जा बैठने की ताक लगाये रहनेवाला नेता भी कहता है—अध्यक्षता को एकता में बाधा मत बनाओ.

इसका मतलब होता है—मुझे

अध्यक्ष बनाओ और एकता करा लो. तुम अपनी तरफ से इसे शर्त न बनाओ.

ऐसे भी होता है कि कभी-कभी लोग इस चक्र में नहीं आते और भोंदू बने रहते हैं. कहते हैं—एकता कर लो, अध्यक्ष भी बन जाओ. ऐसे उदाहरण के बारे में संदिग्ध हो उठना फर्ज हो जाता है. तब नेता तो इस प्रस्ताव का स्वागत करता है पर उपनेता से इसके विरुद्ध बयान दिलवा देता है.

आखिर यह चक्कर क्या है? एकता, अध्यक्षता, चुनाव, बयान, इस सबके पीछे चक्कर है क्या? मथुरादास को यह बात अब समझ में आ रही है. मथुरादास ने अपने पड़ोसी का संवाद सुना तो उनके ज्ञान का फाटक खुल गया. पड़ोसी अपने बेटे के भविष्य को लेकर चिंतित था. पड़ोसी अफीम की तस्करी करता था और उसका बेटा चूंकि चौड़ी मोहरी की पतलून पहनता था, धोती नहीं, इसलिए हशिश की तस्करी करना चाहता था. पड़ोसी बेटे को समझाता हुआ बोला, "बेटा, मैं चाहता हूं तुम कोई नेक धंधा करो. नेता बन जाओ क्योंकि डकैत बंदूकें लेकर जितना नहीं लूट सकता, नेता एक अदद कुर्ता-पायजामा पहनकर उससे कहीं ज्यादा संपत्ति बना सकता है. फिर तस्कर होगे तो पकड़े भी जा सकते हो. नेता होगे, तो लोग लुटकर भी अपने को अहोभाग्य मानेंगे."

अब देखिए, चुनाव होता है तो दस-पांच लाख तो अब विश्वविद्यालय की छात्र-यूनियन का उम्मीदवार ही खर्च कर लेता है. विधानसभा या लोकसभा के चुनाव में यह भोजन नहीं नमक भर है. कितनी मजेदार बात है कि आदमी बीस-पचास लाख रुपया चुनाव में खर्च करता है सिर्फ जनसेवा के लिए. कभी-कभी तो उसका मौका भी नहीं आता. पूरे साल पिछली सीट पर ऊंघकर दिन काट देता है नेता.

मथुरादास को विश्वास है कि सिर्फ ऊंघने का सुख पाने के लिए कोई पचास लाख रुपया खर्च नहीं करेगा. तो फिर किसलिए करेगा?

जरा नजदीक से देखना होगा. वह जन-सेवा की प्रतिज्ञा के बाद जिधर मुंह घुमाकर खड़ा हो जाता है उधर एक नंबर सफदरजंग रोड हुआ करता है. जनसेवा का इससे अच्छा साधन और कोई नहीं है. जनसेवा करनी है तो सफदरजंग रोड संभालो. वह संभल जाये तो सब सिद्ध हो जाता है.

मगर वह सिद्ध हो कैसे? चुनाव में साठ पार्टियों के पचास सदस्य जीतकर आते हैं और हर जीतनेवाला सफदर-जंग रोड की तरफ मुंह करके बैठ जाता है. फिर वहीं बैठा रहता है. भीतर जाने का मौका ही नहीं आता.

कृष्ण भगवान मक्खन बहुत खाते थे. उनकी मां मक्खन छींके से लटका देती थीं. तब कृष्ण अपने दोस्तों को एक-दूसरे के कंधे पर चढ़ाकर सबसे ऊपर खुद चढ़ जाते थे और मक्खन खा जाते थे. सफदरजंग रोड कुछ वैसी ही चीज है. अकेले कितनी भी उछलकूद करो, हाथ नहीं आयेगा. मक्खन हाथ आने के लिए साथियों का कंधा चाहिए. मगर सवाल यह है कि कंधे पर लादे कौन? बस चले तो साथी ठीक तब अपना कंधा खींच लें जब हाथ छींके तक पहुंचने ही वाला हो.

इसीलिए एका जरूरी है. छींके तक पहुंचना है और मक्खन खाना है. एकता हो जाये तो सब हो जाये. 1977 में जनता ने ही छींके तक पहुंचा दिया था लेकिन मोरारजी भाई को सादा मक्खन पसंद नहीं आया. मक्खन की हांडी से उन्होंने कांति देसाई को लटका दिया और खुद बाथरूम चले गये. चौधरी को यह भ्रष्टाचार बहुत बुरा लगा. उन्होंने हांडी उतारी और जमीन पर दे मारी. अब वहां खाली छींका टंगा है और नजरें लगी हुई हैं. एकता का प्रयास जारी है. इस बार जनता को ज्यादा बड़ी जिम्मेदारी निभानी है. हांडी भी खोलनी है और उसमें मक्खन भी भरना है. और कंधे पर लादकर ऊपर पहुंचाना है, एक को नहीं सबको. जनता से सहयोग की जोरदार अपील इसीलिए मथुरादास भी कर रहे हैं. □

आधा शहर

उषा प्रियंवदा

पिछले अंक में आपने पढ़ा : इला ने घर से भागकर अमय से प्रेम विवाह किया था मगर न जाने क्यों अमय ने आत्महत्या कर ली. उसके बाद विधवा इला का जीना दूभर हो गया. सब तरफ उसके बदचलन होने के किस्से मशहूर हो गये. विश्वविद्यालय के विभागीय सहयोगियों के साथ उसका नाम जुड़ने लगा. तभी विश्वविद्यालय ने उसे पी-एच. डी. करने के लिए गोवा जाने की अनुमति दे दी और समय पूरा होने पर उसके परीक्षक के रूप में आये डॉ. राघव, जो न केवल इला को जानते थे, अमय के मित्र थे, इला के शुभचिंतक थे. . . और उन्होंने यहां आकर देखा कि इला तो पहले-सी ही है—बेपरवाह अलमस्त, अपने ही तरीके से जीनेवाली—

▣ लंबी कहानी—समापन किस्त

अमय उन दिनों अक्सर मेरे पास आता था. था तो वह मेरे सहपाठी अमृत का सबसे छोटा भाई पर मेरा व्यवहार उसके प्रति हमउम्र का-सा ही था. शुभा उन दिनों अंजू-संजू को लेकर काफी व्यस्त रहती थी. वह काफी संघर्ष का समय था, मुझे अपने पांव जमाने थे, पुस्तकें लिखनी थीं, नाम कमाना था. सब मायनों में सफल होना था. उन दिनों एक पागल महत्वाकांक्षा मुझे बराबर आगे, और आगे ठेला करती, सचमुच कुछ बनने की. अपने टेढ़े मुंह वाले ससुर को दिखा देने की, कि मैं क्या कुछ नहीं बन गया हूं. शुभा से शादी उन्होंने बड़ी मुश्किलों से की थी. कॉलिज के दिनों का रोमांस था जिसकी परिणति विवाह ही थी. मेरे लेक्चररी के फटीचर दिनों में शुभा के आई.ए. एस. पिता मुझे दामाद रूप में ग्रहण करने के लिये बिल्कुल तैयार नहीं थे. मेरे पी-एच. डी. के लिये येल जाते हुए उन्होंने साफ मना कर दिया था. कुछ-कुछ यह भांपते हुए भी कि शुभा और मैं काफी घनिष्ठ हो गये हैं. तीन साल बाद जब मैं अमरीकन युनिवर्सिटी की पी-एच. डी. और तीन साल की नौकरी का कांट्रक्ट हाथ में लेकर वापस आया तब तक वह शादी करने के लिये तैयार हो चुके थे पर उनकी अकड़ अभी गयी नहीं थी. वैसे शुभा में कोई खास बात नहीं थी, नाटे कद और कुछ गठे बदन की लड़की थी, सांवले रंग और साधारण नाक-नक्श

की, सिर्फ पिता के पद का सहज आभिजात्य था. दूसरे, वह मेरी पहचान की सभी लड़कियों की तरह मुझ पर बेहद रीझी हुई थी. शुभा की असली मिठास तो मैंने शादी के बाद पहचानी. जिससे मैं ऐसा बिंधा कि बरस पर बरस निकल गये और मुझे किसी दूसरी औरत की पहचान नहीं हुई. अपनी जमी-जमाई गृहस्थी के बीच सुरक्षित मुझे अभय पर कभी-कभी बहुत तरस आता. वह हमेशा घबराया-सा और अकेला महसूस करता था. उसे कहीं चैन नहीं था, न नौकरी में, न धन-दौलत में, न भारत में, न पश्चिम में—वह बार-बार भारत जाता, दर्जनों लड़कियां देखकर नापसंद करता, लौटकर आता और अपने को उसी वातावरण में फिट करने की कोशिश करता.

मैं एक बार भारत आने पर जब अमृत से मिला तो उसने कहा, "बेचारे अभय के साथ बड़ी ट्रैजेडी हो गयी."

"क्यों?" हम सबने चौंककर पूछा, "क्या हुआ?"

"गधा है. एक बड़ी ही चालू लड़की ने उसे फांस लिया. बिना हमारी राय लिये उसने शादी कर डाली."

च् च् हमने दुख प्रकट किया. कितने अच्छे रिश्ते उसने ठुकरा दिये थे, कितनी लड़कियों का उसने दिल तोड़ा था.

"कौन है?" शुभा ने पूछा.

"एक आर्मी कर्नल की बेटी. बेतरह बदनाम मां, जिसके प्रेमी ने कर्नल को गोली मार दी, मुकदमे चले, बेटी भी उसी तरह, छोटी उम्र में घर से भाग गयी. पकड़ी गयी. फिर होस्टल में रहकर पढ़ी."

"यह सब हुआ कैसे?" शुभा ने पूछा.

तब तक मीनाक्षी हमारे पास आकर बैठ गयी. उसकी भौंहें तनी हुई थीं, "राघव भाई, इन्हें समझाइए. अब वह घर की बहू है. अब अपने घर की इज्जत उसी के हाथ में है. यह सभी से कहने लगते हैं, उससे फायदा क्या? मुझे तो लड़की अच्छी लगी. अभय के आगे-पीछे घूमती है. बिल्कुल अच्छी बीवी की तरह." अमृत ने कहा, "वह आकर जीजी-जीजी कहने लगी और यह रीझ गयी."

"बचपन में गलती हो ही जाती है. मालूम नहीं उसकी लाइफ कितनी दुखी रही होगी. मां की बदचलनी का यह मतलब तो नहीं कि लड़की भी वैसी ही निकले. . . "मीनाक्षी ने अमृत को झिड़का, "अपने को ही लो. शुभा की गाड़ी में लदकर हम चारों डाक बंगले में नहीं जाते थे? जिन्हें हम रविवारीय पिकनिकें कहते थे. वह आवारापन नहीं था? अगर तुम्हारी मुझसे और शुभा की राघव से शादी न हुई होती तो हमें दुनिया बदचलन नहीं कहती?"

"हम लोग ऑनरेबिल निकले. . ."

"और इला का दोस्त अपने मां-बाप से डर गया. . . यही न, उसने इला को छोड़ दिया. इसमें इला का क्या दोष?"

"अरे मीनाक्षी, छोड़ो भी अभय और उसकी बीवी को. अभय बच्चा नहीं है, मगर तुमने कॉलेज की बात करके उन दिनों को फिर ताजा कर दिया," मैंने कहा और अर्थ भरी दृष्टि से शुभा को देखा.

शुभा मुस्कराने लगी. एक नयी दुल्हन की तरह, लाज भरी हंसी. हम लोग वापस अपने होटल बहुत देर में पहुंचे, वहां अभय बैठा हुआ था, साथ में बीवी भी थी. पहली नजर में मुझे निराशा-सी हुई, जैसी छवि मन में आ गयी थी, उससे लड़की का तालमेल नहीं बैठ रहा था. चेहरे से वह बहुत सौम्य और मृदु लग रही थी, आवाज उसकी संयत और कोमल थी. शुभा, जिसके स्वभाव में पिता का अकड़पन घुला हुआ था और मौके-बेमौके उभर आता था, इस वक्त एकदम रूखी हो गयी थी. उस क्षण न जाने क्यों मैं तटस्थ होकर शुभा को देख सका, अगर वह मेरे कॉलिज के दिनों की प्रेमिका न होती तो मैं कहता कि वह बेहद मामूली औरत थी, आराम की जिंदगी में डूबी हुई, सफल पति के पद के सभी उपकरणों से भरपूर, कानों के लंबे छेदों में झूलती डायमंड की बाली, हाथों में डायमंड रूबी की चूड़ियां, महंगी साड़ी के बार्डर पर टिका मंगलसूत्र. उसका शरीर और चेहरा, ब्यूटी ट्रीटमेंट और हेल्थ प्रोग्राम के बावजूद ढीला लग रहा था. क्या यही बात थी अभय की बीवी इला और उसकी ताजगी में. उसे देखकर अपने-अपने पास जो है उसे दुबारा टटोलकर देखकर तसल्ली करने का मन होता है. नीचे जाते हुए मैंने शुभा के कंधे पर हाथ

किसी चाहत को मन में दबाये रखना ज्यादा खतरनाक है या उसे पूरा कर गुजरना. . . कैसे होते हैं वे क्षण, उन क्षणों की तड़पन, उनकी ऊहापोह जो अपने तमाम संचित दायरों, भय, सोच को दरकिनार कर कुछ पा लेने को बाध्य कर देते हैं . . . स्त्री-पुरुष के बीच के नैतिक-अनैतिक श्लील-अश्लील जैसे दायरों के पार उनकी मानसिक जुगुप्सा से साक्षात् कराती रचना की अंतिम कड़ी—

रख लिया. डाइनिंग हॉल के करीब-करीब सभी हमें देखने लगे. हम काफी अलग और सफल दीख रहे होंगे. हम जब गोल मेज के इर्द-गिर्द बैठे तो मैंने पाया कि इला मेरे पास बैठी है. मेन्यू हाथ में लेकर मैंने सबकी पसंद पूछी, सबसे पहले मैंने अपनी पसंद बताई, "मैं रेशमी कबाब लूंगा, मगर पूरी प्लेट मेरे लिये बहुत होगी. . . "

"मैं आपके साथ शेयर कर लूंगी," उसने हलके मगर स्पष्ट शब्दों में कहा. मेरी अमृत से नजर मिल गयी. अमृत ने मुझे आंख मारी. जिसमें उसकी ओर भद्दा इशारा सम्मिलित था. मैंने सकपकाकर देखा इला को, उसका चेहरा एकदम फक हो आया. यह स्पष्ट था कि उसने अमृत को देख लिया था. मैंने अपने को एक बड़ी ही अजीब स्थिति में पाया—एक क्षण स्तब्ध रहकर मैंने कुछ संभालना चाहा, "और क्या लेंगी आप?" वह देर तक चुप रही, मुझे लगा कि वह एकदम हमको छोड़कर कहीं चली गयी है, कहीं दूर, कहीं अपने अंदर और मेरे पास सिर्फ उसकी निर्जीव देह

बैठी है. सिकुड़ी हुई, सिमटी हुई. मैं अगर उसे उंगली से हिला भी दूं तो वह एकदम राख के ढेर की तरह ढह जायेगी.

"और क्या लेंगी आप?" मैंने फिर पूछा. मैंने पाया कि मेरा स्वर बहुत कोमल और पुचकार भरा हो आया है. जैसे अंजू या संजू को चोट लगने के बाद मना रहा होऊं. उसने आंखें उठायें. वह साफ, उजली दृष्टि थी, कृतज्ञ और हल्की पनीली. उसने क्या कहा. यह मैं नहीं सुन सका. उस समय न जाने क्यों अभय के भाग्य से ईर्ष्या-सी हुई. मैंने कहा, "अमृत ने बहुत पी रक्खी है. इसलिये इससे कुछ भी पूछना बेकार है." यह कहकर मैंने अभी-अभी घट गया वह अप्रिय प्रकरण नकार दिया. मैंने देखा कि इला ने बहुत कम खाया है, केवल चखकर ही छोड़ दिया. खाने के दौरान उसने मुझे बताया कि वह दिल्ली के एक नामी कॉलेज में पढ़ाती रही है.

"राघव दा. अब मैं लौटकर फिर अपनी पुरानी पोजीशन में आ रहा हूं." अभय ने उत्साह से बताया, "इला आगे पी-एच. डी. करना चाहती है. इसीलिये कब से आपसे मिलने को पीछे पड़ी थी."

रात काफी बीत चुकी थी. मैंने अपने को बेहद थका पाया. टैक्सी में बैठते हुए अमृत ने कहा, "उससे सावधान रहना. तुम फसने वाले जीव नहीं हो, फिर भी दूर रहना ही ठीक है." उस रात मैं बिस्तर पर आना टालता गया. इच्छा न होने पर भी रात गये रूम सर्विस से बीयर मंगाकर पीने बैठ गया. शुभा तैयार होकर पलंग पर लेट गयी थी. बोली, "लड़की में सिर्फ रंग ही रंग है, ऐसी सुंदर तो नहीं कि सारा जमाना डूल जाये. अमृत क्या कह रहे थे?"

"तुम तो जानती ही हो, पीने के बाद ऊटपटांग बकने लगता है."

शुभा ने कहा, "वह तो हमेशा से ऐसे ही थे. कॉलेज में भी. पता नहीं तुम्हारी क्यों उनसे इतनी घुटती है."

"शुभा, हमारी शादी उसी ने करवाई थी," मैंने कहा.

शादी के नाम से शुभा को जैसे कुछ याद आ गया, "तुम कब तक बैठे रहोगे? मैं कब तक जागती रहूं?"

उसने पतले पारदर्शी बादलों की तरह झिलमिले कपड़े पहन रक्खे थे, तकिये पर उसका सिर टिका हुआ था, उसने गर्दन मोड़कर जैसे मुझे देखा, उसमें स्पष्ट ही आमंत्रण था. मैं बिना कुछ कहे अपनी बीवी को ताकता रहा. वह एक अच्छी बीवी थी, इसमें शक की गुंजाइश नहीं थी. भले-बुरे में मेरा साथ निबाहती आ रही थी, और मैं भी भरसक उसे खुशी देने की ही कोशिश करता रहा था. शादी के ग्यारह महीने बाद ही जुड़वां लड़कियों के होने से वह बहुत व्यस्त और परेशान हो गयी थी. और उनके पालने में उसका काफी समय चला जाता था. फिर भी मुझे कभी अकेला नहीं लगा. कभी किसी और की जरूरत महसूस नहीं हुई. शुभा अभी भी मुझे देख रही थी. मैंने गिलास आधा छोड़ दिया और कपड़े बदलने गुसलखाने में चला गया. जब मैं बाहर आया तो वह गाढ़ी नींद में सो गयी थी. मेरी प्रौढ़ और ढलती हुई बीवी, मैं उसके प्रति ढेर से स्नेह और अनाम कृतज्ञता से भर गया.

कमरे में रात का सन्नाटा भर उठा था. होटलों के कमरे एक ही-से होते हैं, पलंग, सिरहाने, मेजें, लैंप, ड्रेसिंग टेबिल, कुर्सियां, सोफे—अपने में सीमित और संपूर्ण, कमरे के आगे छोटी-सी बालकनी भी, जिस पर टहलते हुए मैं सिगरेट पीता रहा. अपने अंदर एक जो चिड़चिड़ापन इकट्ठा हो गया था, उससे छुटकारा पाने की कोशिश में. डिनर में चार-पांच सौ उठ गये थे, फिर भी मुझे लग रहा था कि मीनाक्षी और शुभा के अतिरिक्त किसी को वह अच्छा नहीं लगा. शुभा और मीनाक्षी बातों में मग्न थीं. अभय इला के अचानक मुरझा जाने पर काफी परेशान हो उठा था और उसे जल्दी से जल्दी खाना खत्म करके जाने की लगी थी. मैंने सिगरेट फेंक दी. कमरे में आकर मैंने शुभा को जगा लिया.

सुबह तड़के ही दरवाजे पर दस्तक होती है. इला है. मैं अचरज से उसे देखता रहता हूं.

"मैं अंदर आ जाऊं?" उसकी आवाज भारी है.

"तुम घर नहीं गयी?" मैंने पूछा.

"गांव तीन किलोमीटर पर है, रात में सवारी कहां मिलती?" उसने कहा.

मैंने हटकर उसे अंदर आने दिया, "फिर रात . . . " मेरे मुंह से आधा वाक्य निकला—और फिर मैंने जबान दांतों से दबा ली.

लघुकथा

रावण की लंका

■ आनंद बिल्थरे

सरपंच को लगने लगा था कि अगर दुखईराम की कारगुजारियां इसी तरह चलती रहीं तो उनकी स्वर्ण-लंका ताश के महल की तरह ढह जायेगी.

दुखईराम का कसूर केवल इतना था कि वह ग्यारहवीं जमात तक पढ़ा था. देश-विदेश की हलचलों से परिचित था और परंपरागत रूप से सरपंच द्वारा किये जा रहे शोषण का विरोधी था.

पिछले दिनों उसने बेगार करने जानेवाले मजदूरों को 'बहका' दिया था और अब अशिक्षितों में शिक्षा का प्रचार कर उन्हें उनके अधिकारों के प्रति जागृत करने का अपराध कर रहा था.

इस वर्ष दुखईराम के खेत की फसल अच्छी थी, और वह रात-रात भर खेत की मेड़ पर बनी झोंपड़ी में बैठा उसकी रखवाली करता था. दो दिन पहले ही बूधन के जानवर उसके खेत में घुस आये थे और दुखईराम की उससे खासी झड़प हो गयी थी. सरपंच के बीच-बचाव के बाद मामला किसी तरह शांत हुआ था.

इसके तीन दिन बाद ही बूधन की लाश दुखईराम के खेत में पड़ी पायी गयी. गांव का वातावरण गरमा गया और सरपंच की बाछें खिल गयीं. पुलिस आयी और उसने दुखईराम को पांच दिन पूर्व हुए झगड़े की बुनियाद पर गिरफ्तार कर लिया.

इधर-उधर से दोनों के बीच झगड़े और मनमुटाव की गवाहियां मिल गयीं. एकाध चश्मदीद गवाह भी तैयार कर लिया गया. पुलिस ने अदालत में चालान पेशकर रिमांड ले लिया.

दुखईराम की गिरफ्तारी के सप्ताह भर बाद ही अकस्मात उसका घर और खेत दोनों आग की भेंट चढ़ गये. सरपंच ने भागदौड़कर उसकी जमानत करवा दी. दुखईराम ने खेत और मकान की जमीन औनें-पौने में सरपंच को बेचकर गांव छोड़ दिया.

सुनते हैं, थोड़ी-सी सजा काटकर दुखईराम अब शहर में रिक्शा चलाता है. गांव में बेगार फिर शुरू हो गयी है. शिक्षा के टिमटिमाते दीये को अज्ञान के अंधकार ने अपने में पूरी तरह आत्मसात कर लिया है.

रावण अपनी लंका की सुदृढ़ता के प्रति अब पूरी तरह आश्वस्त है. □

● बालाघाट (म.प्र.) 481001

"रात कहां काटी? पूछिए न, रुक क्यों गये? कॉटेज के सामने लकड़ी के कॉउंच पर...और कहां?" कहती हुई वह अंदर चली गयी.

मैं नहा-धोकर निकला तब तक उसने रसोई में चाय बना ली थी. उजाले में इला को देखता हूं, उसका चेहरा फीका है, रंगहीन. उसकी साड़ी, बाल सलीके से बंधे हैं, लगता है जैसे अभी-अभी क्लास पढ़ाने जा रही हो.

वह मेरी चाय बनाकर मुझे थमा देती है और अपना प्याला लेकर कमरे में चली जाती है, दरवाजा हल्के से बंद हो जाता है. मेरा काम खत्म हो गया है. आज ही वापस जाना है. मैं आर्थर से क्या कहूंगा, उसे सोचने को कई दिन हैं. "सॉरी सर," इंडियन एयर लाइंस के रिजर्वेशन काउंटर पर बैठी लड़की कहती है, "तीन-चार दिन तक कोई भी सीट नहीं है. कहिए तो आपका नाम चांस में लिख लूं."

"कौन-सा नंबर?"

"अड़सठवां."

मैं आगे कुछ पूछूं इससे पहले ही अधीर भीड़ का एक रेला आता है और मैं धक्का खाकर दूर पहुंच जाता हूं.

मैं सड़क पर खड़े-खड़े इधर-उधर देखता हूं, पांत के पांत छायादार पेड़ सड़क के बराबर, गंगा जैसी चौड़ी गंभीर नदी, हल्की-हल्की उष्ण धूप, स्त्रियों की साड़ियों के चटख रंग, और बालों में फूल. सब कुछ साफ, सुंदर.

होटल में पता चलता है कि स्टीमर भी सारे भरे हुए हैं, शायद विडियो बस में जगह मिल जाये. बंबई पहुंचने में अठारह घंटे लगेंगे. तो मैं यहां अटक गया हूं. यह बात कोई नहीं मानेगा, शुभा भी नहीं. मेरी जगह गिरिराज होते तो तुरंत इन दिनों के सदुपयोग में व्यस्त हो जाते, जफर होता तो—

कॉटेज खाली है. इला नहीं है, पर उसकी अटैची अभी भी कमरे में है.

मुझे गुस्सा आ रहा है अपने पर, इला, मिटी पर, गिरिराज, जफर, शुभा, सभी पर, पूरी दुनिया पर. इला को खूब अच्छी तरह मालूम होगा कि मैं चार दिन तक निकल नहीं पाऊंगा. उसे मेरा कार्यक्रम मालूम था. मैं चार दिन एक जगह नहीं बैठा रह सकता. इस सबका मतलब क्या है? वे सब सच कहते थे. आधा शहर जो अपने को इला का प्रेमी बताता था, सच कहता था. चलो, निकलो, बस से ही सही. लंच खाता हूं. थोड़ी देर स्विमिंग पुल के पास बैठता हूं. काउंटर पर बस के टिकट की व्यवस्था को कह दिया है. फिर बिस्तर पर लेट जाता हूं.

फोन बजता है. बस में भी जगह नहीं है. इला दीखेगी तो गला मरोड़ दूंगा.

पूरा दिन ऐसे ही निकल जाता है. पलंग पर पड़े-पड़े और जासूसी उपन्यास पढ़ते-पढ़ते. शाम को पैजामे-कुर्ते में ही मैं रेत पर निकल जाता हूं. सब कुछ कल जैसा है. वही बच्चे, जिन पीती हुई वही औरत, वही लहरें, वही सूर्यास्त. सूरज जब पानी में डूब जाता है तो एक धीमा स्वर पूछता है, "कुछ मांगा?"

मुड़कर देखता हूं, इला है. न जाने कब से पास आकर खड़ी थी. वह ऐसे मुझे देख रही है जैसे कुछ हुआ ही न हो. उस क्षण मेरा सारा तनाव, सारा गुस्सा न जाने कहां बह जाता है. इला है, वह पानी में डूब नहीं गयी है. वह मुझे छोड़कर कहीं चली नहीं गयी है.

"कहां थीं अब तक?" संयत स्वर में मैं पूछता हूं.

"यहीं तो. सुबह पणजी गयी थी, टिकट की पूछताछ करने. आपका चेहरा देखकर बोलने की हिम्मत नहीं हुई. फिर सारे दिन यहीं बैठी रही." उसने फूस के छप्पर से ढकी झोंपड़ी की तरफ इशारा किया.

"सारे दिन?"

"तो और क्या? कितना डरती नहीं हूं आपसे?"

"डरती हो तो यह सब नाटक क्यों करती हो?" वह चुपचाप, निरुत्तर मेरे साथ चलती रही. कॉटेज के सामने आकर हम कुर्सियों पर बैठ गये. "मैं एक बात कहूं. . . एकदम सच-सच. आपके लिये मेरे मन में इतना आदर, इतना स्नेह है कि आप कभी जान नहीं सकेंगे. पहले मैं आपको अमृत भाई की तरह ही बदमाश समझती थी, पर अभय की मौत के बाद आपने जो सहारा दिया, और बिना कुछ मुझसे चाहे हुए, उससे मेरा. . ."

"मैं बदमाश?"

लघुकथा

सिंह और खरगोश

▣ मंगत बादल

जंगल के जानवर एक बार पुनः हिम्मत करके सिंह के पास शांति समझौते के लिए पहुंच गये. बोले, "महाराज! खरगोश ने आपके परदादा के साथ जो व्यवहार किया, वह वास्तव में निंदनीय था. हमें उसके लिए पश्चात्ताप है. चूंकि जंगल में शांति बनी रहे इसलिए नित्यप्रति आपकी सेवा में एक जानवर हाजिर हो जायेगा."

शेर को भला इसमें क्या आपत्ति हो सकती थी.

एक दिन फिर खरगोश की बारी आयी तो उसने देरी के लिये क्षमा मांगते हुए वही पुरानी बात दुहरा दी. शेर उठकर चल पड़ा. खरगोश उसे उसी पुराने कुएं पर ले गया. वहां सिंह ने कुएं में अपनी परछाईं देखी और खरगोश से बोला, "अब जमाना बदल गया है इसलिये मैं इस दूसरे सिंह से संधि करना चाहता हूं. तुम मेरी ओर से संधि-प्रस्ताव लेकर उस शेर के पास जाओ." यह कहकर शेर ने खरगोश की टांग पकड़ी और कुए में फेंकते हुए बोला, "जब तक तुम्हारे जैसे चालाक जीवित हैं शांति रह पाना असंभव है."

इसके बाद शेर शिकार के लिये जंगल में चला गया. □

● शहीद भगतसिंह महाविद्यालय, रायसिंहनगर

"और नहीं?" तीन साल तक शुभा दीदी के फादर ने उनकी शादी की कोशिश की, पर कर नहीं सके. पूरे शहर में मशहूर था कि उनके साथ रोमांस लड़ाकर आप उन्हें छोड़कर विदेश भाग गये."

"तुम्हें किसने बताया? यह सच नहीं है."

"अभय ने बताया था." कुछ देर बाद चुप रहकर उसने कहा, "सच क्या है, यह कौन निर्धारित कर सकता है? आप समझते हैं मेरे बारे में जो कुछ प्रचलित है वह सच ही है? पूरा-पूरा? आपने कभी मुझसे पूछा तो होता?"

"पूछने को था ही क्या? और फिर अपने आप को तो सभी साहु बताते हैं."

"जैसे आप और शुभा दी का रोमांस. तीन साल बाद जब आप वापस लौटे तो शुभा दी के फादर ने आपको रिवाल्वर दिखाकर बेटी से शादी करवाई." यह बात इतनी हास्यास्पद थी और इतनी निरर्थक कि मुझे हंसना ही पड़ा.

"तुम सचमुच इस पर विश्वास करती हो?"

"हां," उसने कहा.

"एक उम्र होती है." इला कहने लगी, "प्यार करने की. खन्ना डैडी के साथ ही काम करता था. कैप्टेन होनेवाला था, स्मार्ट था, खूबसूरत था. मैं होस्टल न जाकर उसके साथ चली गयी थी. रानीखेत में डैडी की कॉटेज थी, वहीं हम दो-ढाई महीने साथ रहे. अगर डैडी न मरे होते तो शायद बहुत दिन तक लोगों को पता न चलता. होस्टल में खबर गयी, ढुंढाई हुई. उसके घरवाले भी आर्मी के थे, ठेठ, उन्होंने डरा-धमकाकर उसे फुसला लिया. सब कुछ एक हिंदी फिल्म की तरह हुआ. शुभा दी आपसे कॉलिज में मिलीं, रोमांस हुआ, आप शादी करने से मुकरकर विदेश भाग गये, इधर उन्हें कोई जुटा नहीं. . ." इला की बात से मेरे मन में थोड़ी-सी सहानुभूति उठी थी, पर अब मैंने चिड़चिड़ाकर कहा, "तुम अपने बचाव के लिए बेचारी शुभा को बार-बार क्यों घसीट लेती हो?"

"क्योंकि वह भी वही कर रही थीं जिसके लिये मुझे रंडी, बदचलन और न जाने क्या-क्या कहा जाता है."

"गिरिराज और जफर कभी अकेले में उसके पास नहीं आते. वह हाथ पकड़कर जफर से बिअर पीने का इसरार नहीं करती, गिरिराज के लिये कबाब नहीं छानने लगती."

"उन दिनों मैं बहुत अकेली थी, भयावह रूप से अकेली."

"तुम्हारे पास हर चीज का जवाब है, साफ-सुथरा, रिहर्स किया हुआ जवाब—जाओ, तुम अंदर जाओ. मैं आज यहां सोऊंगा. . ."

यह तस्वीरों और पोस्टरों का गोआ है. जहां झुंड के झुंड पर्यटक छुट्टी मनाने आते हैं, जिसके बहुत प्रसिद्ध हौली डे विलेज में मैं दो दिन से रुका हूं. ठीक से खाना तक नहीं खाया है, सैर-सपाटे की बात तो दूर रही. पूरे दो दिन इला से झगड़ते-झगड़ते बीत गये हैं. वही बातें जो जिस बिंदु से शुरू होती हैं घूम-फिरकर वहीं आकर फिर खत्म हो जाती हैं, जिनकी कोई निर्णयात्मक परिणति नहीं है. आखिर मैं उससे इतना नाराज क्यों हूं? क्या इसलिये कि मैं चाहता हूं कि वह इज्जत से रहे, सर उठाकर. वह काम-धाम करे. अपनी जिंदगी यों धज्जी-धज्जी फाड़कर बिखरा न दे.

यह सब मेरे लिये इतना महत्वपूर्ण क्यों है? मैं इससे ज्यादा गहरे नहीं जाऊंगा. रुका रहूंगा, इसी तल पर, इला जो भी चाहे करे, वह समझदार है, यह उसका अपना विकल्प है.

कुछ देर बाद इला बाहर निकली है, वह पास बैठते हुए शांत भाव से कहती है, "देखिए, इस सब कहा-सुनी का नतीजा क्या निकलेगा? आप भी बैठे-बैठे कुढ़ रहे हैं, मैं भी खून सुखा रही हूं. आप मेरा कहा सच मानेंगे नहीं, और मैं झूठ को सच स्वीकार करूंगी नहीं."

"मैं तुम्हारा कहा सच कैसे मान लूं? तुम आंख से आंख मिलाकर झूठ बोले ही जाओगी."

"क्यों नहीं सच मानेंगे? मैं औरत हूं, इसलिए? कोई पुरुष कुछ भी कह देगा और आप मेरी बात के ऊपर उसकी बात मान लेंगे? पुरुष होने का कितना दंभ और पूर्वाग्रह है आप में. . ."

"हर बात को स्त्री-पुरुषों की लड़ाई बनाना तुम फेमिनिस्टों को खूब आता है."

वह कुछ कड़ा-सा उत्तर सोच ही रही होती है कि मैं कहता हूं, "अच्छा-अच्छा बस. संधि चलो खाना खा लें, भूख के मारे दम निकल रहा है." मैं उसे शांत करता हूं.

हम लोग रेस्तरां में जाकर बैठ जाते हैं. अपेक्षाकृत मौन में ही खाना होता है. खाने का स्वाद मुंह में ऐसा है जैसे कोयला और राख. वह कभी-कभी हाथ रोक देती है और मुझे देखने लगती है. मैं उस दृष्टि की अवज्ञा कर अपना टंगड़ी कबाब चबाता रहता हूं. लौटकर हम अपने-अपने कमरों में चले जाते हैं. अपने-अपने दरवाजे अंदर से बंद कर लेते हैं. मैं शांत हूं, संयत, ज्यादा देर जागना न पड़े सोचकर मैं नींद की दो गोलियां निगल लेता हूं. उस आधी गफलत, आधे होश की स्थिति में टंगे-टंगे मुझे ऐसा लगता है कि पूरी कॉटिज में एक युवा गंध-सी फूट रही है, दरवाजे के उस पार संगमरमरी, साफ, बेदाग स्त्री का निर्वस्त्र शरीर जैसे किसी प्रतीक्षा में है. मुझे अपने पर ग्लानि हुई. मैं उन सब पुरुषों से अलग कहां हूं? सिर्फ दंम ही है यह गैर जिम्मेदाराना. छवियां, जो मन को शांत पाकर अपने आप आंखों के आगे नाचने लगी थीं, उन्हें मैंने अलग झटक दिया. सारी रात मैं घर के सपने देखता रहा, कलह करती शुमा. आसन्न प्रसवा संजना, गुस्से में भरे दोनों दामाद, हंसते हुए गिरिराज—आपको दूसरी शादी करने से पहले मालूम नहीं था कि यह लड़की नामी रंडी की है— जागकर मुझे अपने मन पर हैरानी होती है. जो कुछ मुझे जागते हुए मथ रहा था, सपनों में भी उससे निष्कृति नहीं मिली थी.

इला टैरेस पर बैठकर नाश्ता कर रही थी, ताजे पपीते और अनन्नास का.

"आप ठीक से सोये नहीं क्या?" वह पूछती है.

"रात को गोली ली थी, उसका खुमार है." मैं एक पूरी चायदानी चाय मंगाता हूं.

"साढ़े आठ बजे शटल पणजी जाती है, वहां आपका टिकट ले चलना होगा. कल एक बजे की उड़ान में हो जायेगा. दिन भर कुछ दृश्य दर्शन करेंगे? वहां से टूरिस्ट टैक्सी ले लेंगे."

मैं चुप रहकर सर हिला देता हूं. यहां से शुरू होता है एक अजीब-सा सिनैरियो. गोली बहुत तेज होती नहीं थी पर दो शायद ज्यादा हो गई थीं. पर शायद थकान और तनाव ने कुछ ज्यादा ही असर किया लग रहा था. टिकट कन्फर्म कराना, मांडवी नदी पर नौका की सैर. किनारे रुककर नारियल का पानी पीना. इला का पीले फूलों की वेणी बालों में बांधना और फूलवाली के कुछ कहने पर दोनों का मुझे हंसकर देखना—यह एक स्लो फिल्म की तरह मुझे लग रहा था जिसकी नायिका थी इला. जिसमें मेरा एक बहुत छोटा-सा पार्ट भी था, शायद खलनायक का. और मैं ही उसका एकमात्र दर्शक भी था.

उसके बाद कहां-कहां हमारी टैक्सी गयी. मेरे मन में सब गडमड होने लगा, सभी 'बीच' मुझे एक से लगते हैं. समुद्र और रेत, रेत और समुद्र. रेत में पंजे धंसा-धंसाकर

ग़ज़ल

▣ अश्विनी पाराशर

आस्था को बेचकर भी पेट भर रोटी मिले,
बस यही अरमान लेकर जी रहा है आदमी.

सड़क से पगडंडियों तक देख कर लौटा हूं मैं,
अपने-अपने अहं लेकर जी रहा है आदमी.

सभ्यता की फटी चादर ओढ़कर बैठा हुआ,
दर्द की मोटी सुई से सी रहा है आदमी.

आदमी का आदमियत से नहीं रिश्ता रहा,
फिर न जाने क्यों अभी तक जी रहा है आदमी.

चलती इला कहती है, "सूरज और समुद्र—या फिर पहाड़ और उसकी बर्फीली चोटियां—मैं समझ नहीं पाती कि मुझे अधिक पसद क्यों है?"

मैं देखता हूं कि इला की एड़ियों में गहरी बिवाइयां पड़ी हुई हैं. मैं ठिठककर खड़ा हो जाता हूं. वास्तविकता का यह छोटा-सा अंश मुझे झकझोर देता है. मेरे मन में ढेर-सी अनाम करुणा आ भरती है.

"यहां एक-दूजे की शूटिंग हुई थी." टैक्सीवाला कहता है. मैं अनुमान लगाता हूं कि शायद कोई पापुलर फिल्म रही होगी.

"और यहां अक्सर रात को डौना पौला का भूत भी दिखाई देता है." इला ने हंसकर कहा.

टैक्सीवाले से इतना घुलकर हंसने की क्या जरूरत है, मैं सोचता हूं साथ में अंजू-संजू की बात मन में उठकर इस विचार के साथ जुड़ जाती है. "पापा कितने दकियानूसी विचार हैं आपके."

"तभी तो तुम्हारी मम्मी से जुड़ा बैठा हूं." मैंने हंसकर कहा था. मेरे अंदर कोई चुपके से फुसफुसाया था. वह है दब्बूपन, कायरता. कभी अपनी जिंदगी का विश्लेषण करना, जो कुछ है उसी से चिपके रहने में सुरक्षा भी है और नेकनामी भी.

"तुम्हारे पापा किसी को आंख उठाकर देखें तो. . ." शुमा ने कहा, "डाइवोर्स कोर्ट में पैसा-पैसा झड़वा लूंगी."

वह निश्चय ही अच्छी जिंदगी है, बीवी, बच्चे. लड़कियों से भी अलग नहीं होना पड़ा. दोनों दामाद भारत से आकर यहीं बस गये. भरा-पूरा चहल-पहल भरा संपूर्ण परिवार. पर इधर सब कुछ चटकता हुआ, दरकता हुआ क्यों महसूस हो रहा है. इला पर इतना गुस्सा, उसे लेकर फेंटेसी, कुल मिलाकर मन में असंतुलन, असंतोष. . .

टैक्सी रुक गयी. उतरते हुए इला कहती है, "मैं यहां रहती हूं." छोटा-सा कच्चा रास्ता है. ऊबड़-खाबड़. एकदम आखिरी छोर पर छोटे से टीले पर टंगी हुई पीली दीवारों और खपरैल की छत की कॉटिज, सामने बरामदा, जिसमें झूला पड़ा है. वहां बैठने से नीचे, काफी नीचे समुद्र दिखायी देता है. उजला और शांत.

"हरे नारियल में जिन पियेंगे?" इला ने पूछा.

"नहीं, सिर्फ डाम. सिर सुबह से घूम रहा है."

"आप आराम से बैठिए." कहकर उसने मुझे स्ट्रा डालकर नारियल पकड़ा दिया. पास बैठती हुई बोली, "आपसे एक बात कहनी थी. मौका ढूंढ रही थी. मगर. . . आपके यहां आने से पहले ही मैं विभाग को इस्तीफा भेज चुकी हूं. अब तक पहुंच गया होगा."

"ऐसा कैसे?" मैंने कहा, "फिर मुझे यहां बुलाया क्यों?"

उसका जवाब न देकर इला ने अपने बालों में उंगलियां फंसाते हुए कहा, "पढ़ाते-पढ़ाते मेरा जी भर गया है. मैं कुछ नया करना चाहती हूं. अपनी जिंदगी नये सिरे से शुरू करना चाहती हूं. अतीत को एकदम धोकर—नयी स्लेट की तरह. अब तक इधर-उधर भटकती रही. बिना चप्पू की नाव की तरह. अब स्थिर बठूंगी. इतने लंबे एकांत और एकाकी रहकर मैंने खूब आत्मविश्लेषण किया है. अब मैं जान गयी हूं कि मैं क्या और किसे पाना चाहती हूं."

"किसे?"

"जिसे हर सूर्यास्त मांगती हूं. . ." यह बात हंसी में उड़ाने की कोशिश करती दृष्टि बचा गयी. फिर गंभीर होती हुई बोली, "मैं इधर एक उपन्यास लिख रही हूं. कुछ-कुछ आत्मकथात्मक. पचास पृष्ठ लिखकर मैंने 'राइटर्स वर्कशाप' में भेजे थे. उधर से अच्छी प्रतिक्रिया आयी है. वहां जाकर पूरा करने की बात चल रही है. अगर वह नहीं भी हुआ तो गर्मी में रानीखेत जाकर रहूंगी. पश्चिम में नहीं छपेगा तो क्या, यहां छपेगा. पैसा मिले तो भी ठीक, न मिले तो भी ठीक."

इला का यह नया रूप है. गंभीर, आत्मविश्वासी, मैं चुप रहता हूं. एकाएक मेरी आंखों के आगे रंग-बिरंगी फुलझड़ियां-सी छूटने लगती हैं.

"इला, मुझे चक्कर आ रहा है." खड़े होते-होते मैं लड़खड़ा जाता हूं. अंदर ले जाते हुए इला की बांह जो मुझे सहारा दे रही है, कोमल भी है, दृढ़ भी. उसका युवा स्पर्श जैसे मेरे चेतना खोते शरीर में घुल-मिल रहा है. पलंग एकदम कड़ा है, तख्त जैसा. इला मेरा चेहरा हल्के-हल्के ठंडे कपड़े से पोंछ रही है. मेरे अंदर से मुझे पूरी तरह झिझोड़ते हुए एक लंबी सांस निकल आती है.

"इला, मुझे माफ कर दो." मैं बुदबुदाता हूं. मेरे चारों तरफ एक नींद भरा अंधेरा है, एक सन्नाटा,, जिसमें मुझे अपने दिल की धड़कन बहुत तेज सुनाई दे रही है.

मैं कई घंटे सोया होऊंगा. जब जागता हूं तब तक धूप ढल गयी है. बरामदे में तेरह-चौदह साल की नौकरानीनुमा लड़की बैठी है.

"बाई, उधर बीच पर गयी है." वह कहती है.

मैं बरामदे में खड़ा होकर अपने को आजमाता हूं. सोने से निश्चय ही खुमार उतर गया है. मैं एकदम स्वस्थ महसूस करता हूं, जैसे किसी अंधेरी खोह से निकल आया हूं.

चाय पीते-पीते मैं अनमना-सा नीचे देखता हूं. इस समय रेत पर काफी लोग जुट आये हैं. मैं पुरानी आदत के अनुसार सारी बातें तरतीबवार रखकर देख रहा हूं. इला ने इस्तीफा दे दिया है, वह उपन्यास लिखेगी, थिर होकर बैठेगी. और मैं? क्या करूंगा? आर्थर से कहकर उसका इस्तीफा रुकवा सकता हूं. जब तक उपन्यास प्रकाशित न हो जाये, तब तक के लिये. इला को हमेशा के लिये खो देने के विचार से यह बूढ़ा सीना इतना विचलित क्यों हो रहा है.?

तभी इला आती दिखायी देती है. शायद समुद्र स्नान से लौटी है. उसने महीन-सा गाउन शरीर पर डाल रखा है, जिसके अंदर से उसकी बुंदकीदार बिकिनी झलक रही है. वह निस्संकोच आकर बैठ जाती है और खाली प्याले में चाय छानती हुई पूछती है, "अब कैसी तबीयत है?"

"अब ठीक है."

"खाना-पीना भी तो ठीक से नहीं हो रहा है." कहकर वह पीछे झुकती है तो गाउन का दायां पल्ला पीछे ढलक जाता है और न चाहते हुए भी मेरी दृष्टि उसकी जांघ तक अनावृत हो आयी टांग पर अटक जाती है. गाउन से अपना पूरा पैर ढकते हुए वह सरल भाव से कहती है, "बचपन में दीवाली पर बुरी तरह जल गयी थी, सलवार ने आग पकड़ ली थी. उसी का यह निशान है, जला, झुलसा हुआ. साड़ी पहनने से ढंका रहता है. आप इतने ताज्जुब से मुझे क्यों देख रहे हैं. . ." वह उठ खड़ी होती है, "मैं कपड़े बदलकर अभी आती हूं."

मैं भी उठ खड़ा होता हूं. मुझे किसी प्रमाण की जरूरत नहीं बची. वह जैसी भी है, है. और मैंने उसकी चाहना की है, शायद उस पहले दिन से ही.

इला मुझे विस्मय से देख रही है. फिर उसका चेहरा एकदम बदल जाता है. उसमें प्रतीक्षा भी है, आह्वान भी. मुझे पूरी तरह मालूम है कि अगर मैं एक कदम आगे बढ़ा तो फिर पीछे नहीं जा सकूंगा. मेरे आगे-पीछे सभी कुछ एक अंधेरे में डूबने लगा. शुमा, अंजू, संजू, घरजमाई, नाती, नातिनी, दोस्त, समाज, नाम, इज्जत, डीनशिप, प्राविडेंट फंड, पेंशन. सब कुछ एक सर्वग्रासी बाढ़ में डूबा जा रहा है. छब्बीस साल का विवाहित जीवन एक मिट्टी के ढूह की तरह गिर गया है.

डूबते हुए सूरज का आलोक हमारे चारों तरफ भर उठा है. आगे क्या है, मैं नहीं जानता. इला मुझे खींचकर चांटा मार सकती है. मुंह फेर सकती है. मेरा उपहास कर सकती है. या फिर मेरे बढ़ते हुए हाथ को सहारा दे सकती है. निर्णय अब उसका ही है. सूरज पानी में एकदम डुबकी लगा गया. इला और मैं एक दूसरे की ओर मुड़े. हमारी आंखें मिलीं. मैंने कुछ कहने के लिये मुंह खोला, पर इला ने मेरे होंठों पर उंगली रख दी.

"बाद में बताना," उसने कहा. □

इस चित्र का कोई मनपसंद शीर्षक, सिर्फ पोस्टकार्ड पर अपने नाम-पते सहित 31 अगस्त, 1984 तक इस पते पर भेज दें—**संपादक, सारिका (तस्वीर बोलती है : 362), 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002** चुने गये तीन शीर्षकों पर क्रमशः 50, 30 और 20 रुपये के नकद पुरस्कार दिये जायेंगे. आप कितने भी शीर्षक भेज सकते हैं, लेकिन हर पोस्टकार्ड पर ऊपर प्रकाशित 'तस्वीर बोलती है' बतौर कूपन चिपकाना आवश्यक है. एक कार्ड पर केवल एक ही शीर्षक भेजें.

छाया : सुनील भाटिया,

3-प्रेमनगर, रोहतक (हरियाणा)

तस्वीर बोलती है

निरोध...
इसलिए कि बच्चा होने के पहले आपको प्यार और खुशियां प्राप्त करने के अनेक अवसर मिलें

जब एक साथ रहने की आपकी सबसे अधिक इच्छा होती है, निरोध आपकी सहायता करता है। आपको इतना समय प्रदान करता है कि इस दुनिया में आने पर आप अपने बच्चे का स्वागत शानदार ढंग से कर सकें।

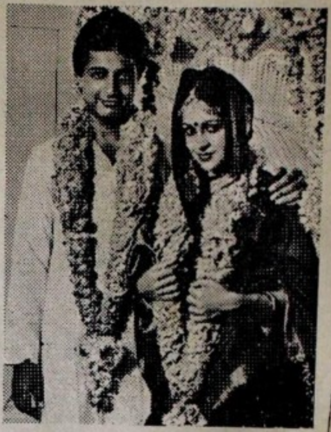

सुखी और निश्चिन्त वैवाहिक जीवन के लिए—

निरोध का प्रयोग कीजिये

वितरक : ब्रुक बॉण्ड, लिपटन, हिन्दुस्तान लीवर, आई.टी.सी., टाटा ऑयल मिल्स, यूनियन कारबाइड, आईडीपीएल, सिम्थ स्टैनिस्ट्रीट, इण्डियन ऑयल कॉरपोरेशन, भारत पेट्रोलियम, हिन्दुस्तान पेट्रोलियम और आरासन मैच इण्डस्ट्रीज

davp 84/42

ग्रहण

श्री निवास जोशी

मन तो मन होता है, वह चाहे अमीर का हो, गरीब का हो! सवर्ण का हो, हरिजन का हो! मर्द का हो या औरत का हो! वह टूटता है तो फिर टूट ही जाता है और तब सूख जाती है वह नदी, जो जीवन को हरा-भरा रखती है. प्रस्तुत है हिमाचल प्रदेश के पहाड़ी जीवन से उठाई गयी ऐसे ही मन की एक मार्मिक कथा–

अंधेरे को चीरती हुई बस चली जा रही थी. बाएं हाथवाली सीट पर बैठे सज्जन ऊंघते-ऊंघते जब दिनेश के कंधे पर आ गिरते तो हड़बड़ाकर सीधे बैठने का प्रयत्न कर फिर से ऊंघने लग जाते. दायीं तरफ वाला जोड़ा और उनका बच्चा आज ही इंग्लैंड से लौटे थे और अब पंजाब जा रहे थे.

महिला ने कहा "इन्ना नी होया होणा इथ्थे. अखबार वाने कुज बड़ा-चढ़ा कर लिख देंदे हन. इत्थे तो सब ठीक-ठाक ही जापदा है." पुरुष ने इस पर तो कोई प्रतिक्रिया जाहिर नहीं की, पर बच्चे से बोला, "व्हाई कांट यू सिट प्रीपरली गंस?"

गंस नाम ने दिनेश को झकझोरा. इस बच्चे का पूरा नाम क्या हो सकता है? गुरवेश सिंह, गजिंदर सिंह! तभी वह अपने गांव में विचरने लगा, जहां उसे भी दिन्ना कहकर पुकारा जाता था. दिनेश का दिन्न तो चलो ठीक है, पर सुरेश को सीमू, नरेंद्र को किक्की, हेतराम को गुल्लू, शेखर को गुड्डू, उपनामों के स्रोत खोजते सामने मंगला आ खड़ी हुई.

मंगला गांव के एक कनैत की बेटी थी. सुबह घर के काम में जुटती तो देर रात सोने तक उसे कुछ न कुछ काम ही रहता. हंसी-मजाक के लिए उसे समय ही न मिल पाता. घास काटते वक्त सामने वाली धार से ऊंचे स्वर में कभी वह गंगी गा देती तो कभी गुरटू के नाले में पानी भरते हुए किसी से दो बोल सुन लेती और दो सुना देती. मौणा के जंगल से उस दिन वह बाण के पत्तियों का एक बड़ा सा बोझ सिर पर उठाये आ रही थी. उसका चेहरा पत्तियों से पूरा ढका हुआ था, लेकिन दिनेश मंगला की लचकती चाल दूर से ही पहचान लेता था.

वह उसके सामने खड़ी हो गयी, "दिन्ना पंडत, चल दिया स्कूल?" दिन्ना ने शायद हां तो कहा, पर वह मंगला का सब कुछ टटोलने में लीन हो गया. जवानी की दहलीज पर कदम रखे गांव की सुंदर लड़की अपने दोनों हाथों को बोझ थामने के लिए ऊपर उठाये उसके सामने खड़ी थी.

"बड़ी बछाण ले आयी आज?"

"दो कम दस डंगर हैं पूरे. तीन ओबर है. बिछाणी नी पड़ती? तेरे तो कोलियों के छोरू आ जाते हैं, हमारे साथी को तो सब काम खुद करणा पड़ता है."

"सुस्ता ले थोड़ी देर." दिन्ना ने प्रस्ताव रखा और साथ ही सवाल कर दिया, "उतार दूं बोझा?"

"तकलीफ माफ पंडतजी!" मंगला ने मजाक-सा उड़ाया था. फटी कमीज से झलकते गोरे बाजू को देखते हुए दिन्ना ने पूछा, "कमीज कैसे फटी तेरी?"

"क्यूं? टांका लगाणा है तैने?" मंगला झट से बोली. इस पर दिन्ना कुछ सहम-सा गया. मंगला ने निरुत्तर दिन्ना को स्वयं ही जवाब दे दिया; "तू क्या लगायेगा टांका पंडत, बिशनू होता तो जरूर लगा देता."

तभी एकदम ब्रेक लगा. गंस का सिर शायद अगली सीट से टकराया होगा. वह रोने लगा था. उसे चुप कराने के लिए उसकी मम्मी ने एक बड़ी-सी चाकलेट उसे पकड़ा दी, जो संभवतः उन्होंने फ्लाइट से पूर्व हीथ्रो के ड्यूटी फ्री काउंटर से खरीदी होगी. साथ की सीटवाले सज्जन ने नींद से बोझिल लाल-लाल आंखों से दिनेश को देखा, मानो पूछ रहे हों कि वह कहां पहुंच गये हैं. दिनेश ने भी कह दिया, "करनाल पीछे रह गया है." उन्होंने शीशे से बाहर अंधेरे में पीछे दौड़ती जमीन को कुछ देर देखा और फिर उनका सिर बायें कंधे में लुढ़क गया.

दिनेश भी बाहर फैले अंधकार को देखता रहा, जिसमें से एक आकृति उभर आयी, काले रंगवाले बिशनू की. मोटी-सी गर्दन के ऊपर गोलाई लिये हुए चेहरा ऐसा लगता था कि किसी नवसुखिए शिल्पी ने मोटे-मोटे होंठ, चौड़ी नाक और छोटे-छोटे कान जड़ दिये हों. उसके काले घने बाल हमेशा तेल से चिपचिपाये रहते थे. उसका शरीर सुडौल और सुगठित था. बस, यही आकर्षण था उसमें. बिशनू गांव के सरकारी स्कूल में पढ़ता था और घर के हर काम में माहिर था. खेत गोड़ना, हल चलाना, ऊंचे से ऊंचे पेड़ पर चढ़कर पत्ती काट लाना, पानी की दो कनस्तरों की बहंगी कंधे पर और भरी बाल्टी हाथ में ले आना उसके लिए साधारण काम थे. उसे गांव के सभी परिवारों के खेतों का पता रहता था कि किसने कहां-कहां क्या बीज बोया है. इसलिए बरसात में खेतों ही खेतों में घुसकर हरे-हरे खीरे खाने हों तो दिन्ना हमेशा बिशनू को साथ ले जाता. वह अच्छे नरम खीरे तोड़कर लाता और दिन्ना को खाने को देता. जब दिन्ना इन खीरों को खा रहा होता तो बिशनू ऐसा अनुभव करता मानों दिन्ना ने उस पर बड़ा एहसान कर दिया हो. वह दिन्ना से कुछ ही महीने तो छोटा था, पर वह हमेशा उसे भाईजी कहकर बुलाता था.

स्कूल जाते कभी दिन्ना का बस्ता भी उठा लेता था. कई बार दिन्ना शौकिया लकड़ी फाड़ने लगता तो वह उसके हाथ से कुल्हाड़ी लेकर दो चार चोट में ही लकड़ी के झोटल के छोटे-छोटे टुकड़े कर देता था. हर तरह से वह दिन्ना के घर के काम में हाथ बंटा देता था.

"भाईजी, आप तो बड़े आदमी हैं. वैसे मुझसे उम्र में भी बड़े हैं—पढ़ाई लिखाई में भी." उसके इस कई बार दोहराये गए वाक्य से दिन्ना अपने आपको बड़ा आदमी ही समझने लगा. उसके हर हुक्म को बजा लाने वाला एक वफादार सेवक उसे बिशनू के रूप में मिल गया था.

उस दिन बिशनू ने भुट्टे भूने तो नरम दानेवाला दूधिया मीठा भुट्टा दिन्ना को दिया और थोड़ा सख्त दानेवाला अपने लिए रखा था. दाने खाते-खाते वह दोनों ऊपर की ओर चले गये तो मंगला उपले बनाती दिखाई दी थी.

"कल तो बड़े ऊंचे कंठ से गंगी गाने लगी थी."

"तेरा क्या खाया मैंने?" मंगला का जवाब था.

"मैंने कब कहा तू मेरा कुछ खा रही थी. वैसे तुझे इनकार भी कोई नहीं है. जब जी चाहे, जो जी चाहे, खा लेना." दिन्ना ने भी शब्द उछाल दिये थे.

"अच्छा बोल, जब मैं घास काट रही थी तो शीशा क्यूं मारा था मेरे को. पैर फिसल जाता तो सीधा खड्ड में पहुंचना था, हड्ड नी मिलणी थी तब मंगला की." वह पाथे हुए उपले की ढलान पर थोपते हुए बोली.

"वह तो विज्ञान का एक प्रयोग दिखा रहा था मैं बिशनू को. प्रकाश को दर्पण के द्वारा एक स्थान पर कैसे केंद्रित किया जा सकता है." दिन्ना ने अपनी विद्वता के जाल में वास्तविकता को छिपाना चाहा था.

"आया बड़ा ज्ञाण-ध्याण की बात बताने वाला, जैसे हरद्वार का पंडत हो." मंगला ने बुजुर्गों से सुनी बात कही.

ग़ज़ल

अपने ख़िलाफ ही न ये खंजर उठाइए,
खुद को न दुश्मनों का सिपाही बनाइए.

दीवार पर चुनाव का मंजर सजाइए,
फांसी के फंसले की तरह फड़फड़ाइए.

सूरज सिसक रहे थे अंधेरे की कैद में,
जब आपने कहा था हथेली दिखाइए.

कुछ लोग पूछते हैं ये पत्थर उछालकर,
ज़ख्मों का क्या मिजाज है हमको बताइए.

नारे लगाना जुर्म है सड़कों पे आजकल,
हिम्मत को अपने घर का ही आंगन दिखाइए.

मुंह में पड़ी लगाम हमारी पिघल सके,
यारो! अब अपने आपको इतना जलाइए.

▣ शबाब

"अच्छा छोड़, तू तो मूरख है. तेरी समझ की कहां ये बातें. मक्की खायेगी?" दिन्ना ने पैंतरा बदला.

"खाऊंगी जरूर, पर दो शर्तें होंगी." मंगला ने आंखें फैला दीं, "बोल." दिन्ना ने कहा.

"हाथ मेरे हैं गंदे, तो दाणे मुंह में डालने होंगे." मंगला बोली. सुनकर दिन्ना के शरीर में एक अजीब-सी गुदगुदी हुई थी. मंगला के लाल-लाल ताजा होंठों को छूती उंगलियां और फिर हंसते-हंसते दांतों के बीच से जीभ पर गिरते दाने. . .

"और दाने बिशनू डालेगा." मंगला ने दूसरी शर्त भी सुना दी थी.

दिन्ना उस पतंग की तरह जमीन पर आ गिरा था, जिसे नौसिखिए ने बस उड़ाया ही हो. बिशनू ने दिन्ना के प्रति वफादारी दिखाते हुए मंगला से कहा, "भाईजी की मक्की है, इनसे ले तू दाणे."

"डालणे हैं तो तू डाल नहीं तो रफा-दफा हो यहां से. आ जाते हैं टैम बरबाद करने." थानेदारी टोन में मंगला ने अल्टीमेटम दे दिया था.

उस गांव के पंद्रह-बीस घरों में कोली और कनैतों के घरों के अतिरिक्त चार घर बामणों के थे. उन्हीं में से एक दिन्ना का घर था. गांव में उस परिवार का आदर था. एक तो दादाजी जाने-माने पंडित थे. टिपड़ा देखते और शादी-ब्याह भी पढ़ देते थे. दूसरे, उसके पिताजी दसवीं पास थे और सरकारी दफ्तर में सुपरडेंट थे. दिन्ना बचपन से ही पैंट पहना करता था. वह शहर के अंग्रेजी स्कूल में पढ़ता था. बड़े पंडतजी का पोता जानकर बड़े-बूढ़े भी 'पायलागो पंडतजी' कहकर उसका अभिवादन करते थे. उसके घर में कोलियों के लड़के जमीन-बच्छू का काम करने के लिए आया करते थे.

दिन्ना को तो सिर्फ गांव के चश्मे से पानी लाना होता था. पीने का पानी तो शुद्ध होता है न! इसे कोली नहीं छू सकते थे. पानी लाने में दिन्ना की रुचि रहती थी, क्योंकि गुश्टू के इस नाले में मंगला भी अपना टोकना भरने आया करती थी.

'गुश्टू का नाला' इसी चश्मे का प्रचलित नाम था. यह गांव से फलांग भर दूर था. जल स्रोत से एक कल द्वारा पानी नीचे सीधे स्थान तक लाया गया था, जहां रामबाण की बड़ी पत्ती को कल के सिरे पर मिट्टी थोपकर जोड़ दिया था. यही पत्ती नल का काम करती, जिससे पानी की धार अविरल बहती रहती. नल के इर्द-गिर्द बड़े-बड़े पत्थर रख दिये गये थे, जिनकी सतह मैले कपड़े पीटने-धोने से चिकनी हो गयी थी. बहते पानी को जमा करने के लिए नीचे की ओर एक छोटा तालाब-सा बना दिया था, जहां गायें-बच्छू पानी पिया करते थे. इधर-उधर चारों ओर लगाये गये ब्यूंस के वृक्ष दूर से ही यहां पानी होने का संकेत देते थे.

चंडीगढ़ आ गया था. यात्री उतरने लगे. गंस और उसके मां-बाप उतर गये और दिनेश के साथ ऊंघनेवाले सज्जन भी. बस प्रायः खाली होकर ही आगे चली. दिनेश ने पूरी लंबी सीट पर अपने को अकेला पाया. ज्यों-ज्यों बस पहाड़ों की ओर बढ़ती जा रही थी, अपने गांव की पिछली यादें दिनेश के सामने खुलती चली जा रही थीं.

बोर्ड की परीक्षाएं चल रही थीं. दिन्ना ग्यारहवीं का अंतिम पर्चा देकर घर लौटा तो पानी लाने का नियत समय हो चुका था. मंगला पानी लेकर चली न जाये, इस डर से उसने बहंगी उठायी और दौड़ लिया गुश्टू के नाले की ओर. पेड़ों के झुरमुट के पीछे से उसने देखा—बिशनू और मंगला खूब हंसी-मजाक कर रहे थे. तभी बिशनू ने एक बड़ा-सा पत्थर उठाया और छप्प से तालाब में फेंक दिया. कीचड़ के छींटे हवा में उड़े और मंगला के कपड़ों और चेहरे पर विवाह में लगाये जाने वाले कुमकुम बिंदुओं की तरह चिपक गये. तुनुकमिजाज मंगला इस पर बिगड़ी नहीं, बल्कि खूब जोर-जोर से हंसने लगी. बिशनू ने उसका 'ढाटू' सिर से उतारकर उसका चेहरा पोंछ डाला और फिर से उसके सिर में लपेट दिया. दिनेश का तन-बदन जल रहा था इन अठखेलियों को देखकर. मन ही मन सोच रहा था कि मंगला अपना भरा टोकना लेकर घर जाये तो बिशनू की ऐसी-तैसी कर दूं. तभी मंगला ने उछलकर ब्यूंस की दो नरम डालियां तोड़ीं. हाथ में लपेटकर गोल 'बिन्ना' बनाया और सिर पर रखकर बिशनू के सामने मुस्कराते हुए सीधी खड़ी हो गयी. बिशनू उसका इशारा समझ गया और टोकना उसके सिर पर रख दिया.

जब वह टोकना सिर पर उठाये चली तो बिशनू उसके पीछे-पीछे कूल्हे मटकाकर चलने की नकल करने लगा था. उसने मुड़कर बिशनू को देखा और फिर दोनों खिलखिला पड़े थे. इधर दिन्ना का रोम-रोम जल रहा था. मंगला ज्योंही मोड़ पर ओझल हुई, वह दौड़ा. पानी के नाल के पास बने घड़े पर खाली कनस्तर फेंक और बहंगी उठाकर एक-दो-तीन थप्पड़ें सीधी बिशनू के जड़ दीं. बिशनू इस अचानक हमले से चौंका. उसने दिन्ना को देखा और बायें हाथ से बहंगी पकड़ ली. बहंगी को छुड़ा पाना दिन्ना के बस का न था. बिशनू चाहता तो पंडित की ऐसी कुटाई करता कि वह जनम-जनम तक नीला हो जाता.

"भाईजी, क्या हुआ? क्या किया है मैंने?" बिशनू सहमा-सा बोला.

"अकेली लड़की को देखकर छेड़ता है—हरामजादे, साले नीच, कभी शकल देखी है आईने में अपनी, काले हब्शी. तू तो गोरी उजली मंगला पर ग्रहण-सा लगता है. छोटा आदमी कितना भी बड़े आदमियों की संगत करे, छोटा ही रहता है. मंगला हमारे जैसे बड़े आदमियों के लायक है. सुन ले कान खोल के, ऐसी हरकत करनेवाले तुझ जैसे नीच को तो गोली से उड़ा देना चाहिए था." दिन्ना बदहवास बकता चला गया.

बिशनू ने कुछ नहीं कहा. उसकी आंखों में आंसू छलक आये थे. उसने पानी की बहंगी उठायी. बड़े आदर से दिन्ना को देखा और अपने घर की ओर चल दिया.

उसी शाम दिन्ना ने मन ही मन बिशनू को न जाने कितना कोसा था. उसने परमात्मा से उसकी मौत तक मांग ली थी. यह भी ठान लिया था कि छोटे आदमियों के इस गांव में वह अब रहेगा भी नहीं. कल ही दिल्ली चला जायेगा, चाचाजी के पास, जहां वह आगे पढ़ेगा और नौकरी करेगा. लौटकर कभी वापस गांव नहीं आयेगा.

दिनेश अपनी सीट पर लुढ़क-सा गया. बस ने पहाड़ी रास्ते का एक तीखा मोड़ बड़े वेग से काटा था. वह संभलकर बैठा. पीछे मुड़कर देखा. केवल पांच यात्री कंबलों में लिपटे सो रहे थे. दिनेश ने भी अपना कंबल निकाला और उसमें गुड़मुड़-सा दुबक गया. एक झपकी-सी आ गयी. उस बस यात्रा के अंतिम हिचकोले के साथ उसने बाहर देखा कि वह अपने बस स्टाप पर पहुंच चुका था. पौ फट चुकी थी. बस स्टैंड से फुर्ती के साथ वह चढ़ाई पार करना चाहता था, पर पंद्रह वर्ष देस में रहने के बाद आज वह चार कदम चलकर

रेखाएं

▣ दामोदर खड़से

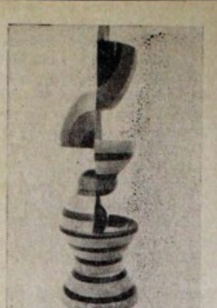

'गरीबी रेखा' से ऊपर उठाने के लिए कर्ज वितरण का एक कार्यक्रम आयोजित किया गया था. सामने स्कूल के बच्चे, उनके पीछे साफ-सुथरे कपड़े पहने उत्साही और प्रफुल्लित लोग और सबसे पीछे मैले-कुचैले, गुमसुम और भुनभुनाते लोग खड़े थे. मंत्री महोदय आये, मुस्कराकर, हाथ जोड़कर बैठ गये. गांव के मुखिया, अध्यक्ष महोदय ने उनके कान में अपनी चोंच डाल दी. गांव की उन्नति गाथा सुनकर मंत्री मुस्काते, गंभीर होते, कैमरा सामने आते ही फिर मुस्करा उठते. बिल्कुल पीछे से आवाज आयी, "मुखिया चोर है!"

मंत्री सतर्क हुए. मुखिया ने फिर चोंच घुसायी, "शराब ने गांव बर्बाद कर दिये. . ."

मंत्री आश्वस्त हुए.

वह भीड़ को चीर कर सामने आ रहा था. मुखिया अचानक बोल पड़े, "कर्जा दो, ऊपर से गालियां खाओ. . ."

मंच के पास से ही कोई बोला, "कलयुग में ऐसा ही होता है. मुखिया साला चोर है. तीन हजार पर दस्तखत लिये और सिर्फ एक हजार की मुर्गियां दीं... झोपड़ा गिरवी रख लिया. . . बड़ा आया गरीबी हटानेवाला. . ."

मंत्री आवश्वस्त हो गये कि वह वाकई पिये हुए है, अन्यथा होश में सरकारी लोगों के सामने यह कहने की इसकी क्या मजाल! फिर तीन-चार लोगों ने उसे दबोच लिया. समारोह समाप्त हुआ.

कार्यक्रम के बाद मुखिया के घर डिनर में सारे सरकारी अधिकारी और नेता चिकन पर टूट पड़े थे. इससे पहले उन्होंने जाम मीट कराये थे. कुछ लोग मुखिया के बड़े दरवाजे की एक छोटी खिड़की से भीतरी दृश्य बड़ी उत्सुकता से देख रहे थे. भीतर उत्सव था, मस्ती थी, रंगीनी थी और वैभव उस प्रांगण में बूंद-बूंद बरस रहा था. डिनर अपने चरम शिखर पर पहुंच रहा था. तभी मुखिया ने आदिवासी छात्रावास के अनुदान की बात, शहर के ठेके की बात और नये परमिट का सिलसिला शुरू कर दिया, मंत्री महोदय के कान में. . . . इतने में दरवाजे पर जोरदार शोर-शराबा शुरू हुआ. पूरे जोर से दरवाजा एक झटके के साथ खुल गया. . . डिनर वैसे समाप्ति

घर था. फिर भी वह चिल्लाया, "मुखिया, हरामखोर तुमने मेरी सारी मुर्गियां उठवा लीं, भगवान तुम्हें नहीं छोड़ेगा. . ." मंत्री के हाथ से चिकन का टुकड़ा छूट गया. . . उनकी सफेद-शुभ्र पोशाक पर धब्बे पड़ गये. लोग दौड़े. मंत्री मुस्काये, बिगड़े नहीं. . . शायद भरपूर नशे में थे. . . ठीक है, रहने दो, कहते हुए. . . हाथ धोने निकल पड़े. बस क्या था. डिनर में खलल. मुखिया की आंखों में लाली और इस लाली का रंग उनके गुर्गे समझ गये. बाहर दरवाजे पर फिर शोर-शराबा हुआ. उसके मुंह से ढेर सारा खून बाहर आया.

सुबह बस-स्टैंड पर सबकी जबान पर रात की चर्चा थी. वह कांधे पर कुल्हाड़ी रखे सुस्त कदमों से आ रहा था और वे अखबार पर नजर फेरने लगे.

वह जैसे ही अलाव के पास पहुंचा, उसकी नजर अखबार पर पड़ी. उसका यह गांव शहर के पास था. रात की खबर फोटो सहित अखबार में छपी थी.

उसने अखबार छीन लिया. मुखिया और मंत्री के मुस्कराते चित्र देखकर उसकी आंखों में एक अलाव उभरा. वह बड़बड़ाया, "मैं तुम्हें जिंदा नहीं छोड़ूंगा, मुखिया. . . तूने मेरा घर उजाड़कर मुझे गिरवी रख दिया है. . . !" लोग खिसकने लगे और वह चीते की तरह मुखिया के घर की ओर भागा.

लोग सहमे-सहमे कानाफूसी करने लगे. एक ने समाचारनुमा बात कहकर आतंक को दूसरी दिशा में स्थापित कर दिया, "मुखिया दिल्ली चले गये हैं, मंत्री के ही साथ. . ." □

●महाराष्ट्र बैंक बिल्डिंग, डी-37 वागले इंडस्ट्रियल एस्टेट, ठाणे-400604 (महाराष्ट्र)

ही हांफने-सा लगा था. धीरे-धीरे चढ़ाई पार की. धार पर पहुंचा तो दूर नजर आया अपना गांव. कुछ खास बदला नहीं था. वही दस-पंद्रह घर. सब लगभग एक ही तरह के. नीचे ओबरा, ऊपर बरामदा, रहने के कमरे और रसोई. गेरुई मिट्टी से पुते इन मकानों को स्लेट की ढलानदार छतों ने ढांप रखा था. दिनेश ने तेजी से कदम बढ़ा उतरता-चढ़ता संकरा रास्ता पार किया. घर पहुंचकर हाथ-मुंह धोया. कपड़े बदले और उत्सुकता के साथ बाहर अपना बचपन तलाशने निकल पड़ा.

मंगला के घर के आगे से निकला तो ठिठक गया. बरामदे में बैठी महिला अपने बच्चे को गोद में लिटाये अपने झटके हुए बदन पर सूर्य की पहली किरणों का सेंक ले रही थी. आंखों में शरारत अभी भी झलक रही थी.

"ओह दिन्ना बाबूजी, कब आये? जनम ही लगा दिया दिल्ली में." मंगला ने कहा था.

"मंगला, गांव में कुछ भी तो नहीं बदला. वही घर है, वही खलिहान, वही डंगरों की बू. तुम इतनी क्यों बदल गयी? क्या बिशनू सिंह देखभाल नहीं करता? कितने बच्चे हो गये तुम्हारे? यह लड़का है या लड़की? "दिनेश ने ढेर सारे सवाल कर दिये.

थकानभरी मुस्कराहट से मंगला ने कहा, "जी बाबूजी, हड्ड-मांस की कहां लक्कड़ पत्थर से जोड़ रहे हो. शरीर तो बदलता चला जाता है, खेत-घासणी, मकान-ओबरा थोड़े ही बदलते हैं. तुम भी तो बदल गये हो अब."

"तुम तो जनम की ज्ञानी हो मंगला, अच्छा बता, बिशनू कहां है? क्या करता है?" दिनेश ने पूछा.

मंगला ने कुछ शब्द उड़ेलने के प्रयास में गहरी सांस भरी और बोली, "जब तुम चले गये ना बाबूजी, बिशनू मेरे पास आया था, मतेरे साल हो गये. कहता था, मंगला, मैं तेरे लायक नहीं हूं. तुझे तो किसी बड़े आदमी की जनानी होना चाहिए. तुम्हारा नाम लिया था बाबूजी उसने. बोलता था, मैं तो चांद पर ग्रहण-सा लगूंगा तेरे साथ. मेरा शरीर तो गोली खाणे जोग है. फिर वह अचानक कहीं चला गया. लोग कहते थे, फौज में भर्ती हो गया है. कोई बोलते हैं, जीता है, कोई बोलते हैं, मर गया है. चिट्ठी न पतरी,पत्ता ई नईं कुछ उसका."

मंगला के मुख से निकलते हर शब्द के साथ-साथ दिनेश ने महसूस किया, वह सिकुड़ता जा रहा है, छोटा-छोटा और छोटा, सिर्फ ठूंठ.

जड़वत खड़े दिन्ना की ओर एक नजर देखकर मंगला ने सहसा कहा, "धूप छोड़ो न, ग्रहण जैसे क्या खड़े हो गये मेरे आगे." □

● उपसचिव, भाषा एवं संस्कृति विभाग, हिमाचल प्रदेश सचिवालय, शिमला-171002 (हिमाचल प्रदेश)

चलते-चलते

बात फिल्मी जगत की है. भीम और रावण का अभिनय करनेवाला अभिनेता था, एकदम स्वस्थ और चुस्त. एक दिन एक रिपोर्टर उसका इंटरव्यू लेने पहुंचा. बाकी ढेर सारी बातें होने के बाद प्रेस रिपोर्टर ने पूछा.

"आपके स्वास्थ्य का राज क्या है?"

अभिनेता रुका. फिर उसने कहा, "इस प्रश्न का उत्तर मैं दस दिन बाद दूंगा."

"दस दिन बाद क्यों? अभी क्यों नहीं?" प्रेस रिपोर्टर ने अपनी जिज्ञासा प्रकट की, "बात यह है. . ."

"कहिए न. . ."

"मैं अभी नहीं बता सकूंगा. 'च्यवनप्राश' बनानेवाली दो दवा कंपनियों से मेरी बात चल रही है. कौन ज्यादा पैसे देगी, अभी मुझे मालूम नहीं है. जो कंपनी ज्यादा पैसे देगी. उसका बना हुआ 'च्यवनप्राश' मेरी सेहत का राज बनेगा."

रिपोर्टर मुस्कराया और चलता बना.

—हीरालाल ठाकुर

...और भुलाये न बने

अविस्मरणीय सपने, घटनाएं और संस्मरण प्रस्तुत करता पाठकों का अपना स्तंभ

अपेक्षा और सजा

▣ प्रसून वर्मा

बात उन दिनों की है जब मैं कक्षा पांच में पढ़ता था. हमारे विज्ञान के अध्यापक बेहद सख्त थे तथा पढ़ाई के मामले में किसी प्रकार की ढील बरदाश्त नहीं करते थे. विज्ञान मेरा प्रिय विषय था, अतः मैं विज्ञान जी-जान से पढ़ता था. फलतः वे मुझसे प्रसन्न रहा करते थे.

एक बार उन्होंने पूरी कक्षा को दस प्रश्न दिये और अगले दिन उनके उत्तर याद करके आने को कहा. साथ ही यह भी कहा कि जो छात्र उनके उत्तर नहीं दे पायेगा उसे सजा मिलेगी.

अगले दिन उनकी कक्षा में सभी छात्र दम साधे बैठे थे. उन्होंने एक सिरे से प्रश्न पूछना आरंभ किया. किसी छात्र ने एक का उत्तर दिया किसी ने दो का, कोई भी छात्र चार से ज्यादा प्रश्नों के उत्तर नहीं दे पाया. सभी को वे खड़ा करते गये.

जब मेरा नंबर आया तो उन्होंने मुझसे भी प्रश्न पूछे. मैंने उनके नौ प्रश्नों के उत्तर तो ठीक दे दिये परंतु दसवें प्रश्न का उत्तर देने में मैंने अपने आप को असमर्थ पाया. मैं छत की ओर ताकता उत्तर याद करने का प्रयत्न कर ही रहा था कि इतने में मुझे एक झन्नाटेदार थप्पड़ पड़ा, फिर दूसरा और तीसरा भी. साथ ही उन्होंने मुझे कुर्सी पर खड़े हो जाने का आदेश दिया. और बाकी लड़कों को बैठाकर पढ़ाना शुरू कर दिया. मैं कुर्सी पर खड़ा धीरे-धीरे रोता रहा. मेरी समझ में यह नहीं आया कि उन्होंने मुझे मारा क्यों.

पीरियड समाप्त होने पर उन्होंने मुझे 'स्टाफ रूम' में आने को कहा. इस डर से कि शायद और मार पड़े मैं और तेज-तेज रोने लगा. पर जब मैं 'स्टाफ-रूम' पहुंचा वे स्नेह मिश्रित स्वर में बोले, "मैंने तुमसे सभी प्रश्नों के उत्तर की आशा की थी, इसीलिये मुझे तुम पर क्रोध आ गया. तुम्हारी मेहनत में कमी है. आंसू पोंछ डालो और मन लगाकर मेहनत से पढ़ो."

मैं हतप्रभ-सा उन्हें देखता भर रह गया था. □

अनोखा पिता

▣ कु. ज्योति

सन् 1975 के आसपास की घटना है. मैं बड़े भाई के साथ मां को देखने स्थानीय जिला अस्पताल गयी हुई थी. मेरे सामने ही एक व्यक्ति अस्पताल में दाखिल किया गया, जिसकी एड़ी तिलहर से शाहजहांपुर आते वक्त ट्रेन से कट गयी थी. दुर्भाग्य से वह व्यक्ति अपने संबंधियों के आने से पूर्व ही स्वर्ग सिधार चुका था. पत्नी आते ही पछाड़ खाकर गिर पड़ी. तीन मासूम लड़कियां पापा-पापा कहकर बिलख उठीं. मृत व्यक्ति का पिता वार्ड के बाहर बैठा बीड़ी सूतता रहा. उसकी आंखों में आंसू की जगह गुस्से के लाल डोरे उभरे हुए थे. लाश जब पोस्टमार्टम के लिए बाहर लायी गयी तो वह तमाशबीनों की तरह एक किनारे खड़ा हो गया. उसने बहू पर एक निगाह डाली और सैकड़ों लोगों की परवाह किये बिना बड़बड़ाने लगा, "अरे, बदजात! अब काहे रोउत. तैंने हमारे खानदान को नांव मिट्टी मैं मिलाय दौ. अरे, बदचलन! हम समुझाउत हतें—लड़किनी नाहिं होऊनों चाहिए. और तैंने एक नाहीं तीन लड़किनी पैदा करके हमारे खानदान की नाक कटवाय दी. बता वो भला हमारे तीन लड़के. . . हमारे बाप कैं चार बेटे. . . भाइयों के दुई-दुई लड़का औउर जहो बिमलुवा (मृत) जहो मरि गौ तो भला, नांहि तौ पतो नहि कै लड़किनी औउर होऊती."

पिता का ऐसा रूप मैंने पहली बार देखा था. ऐसे पिता की कल्पना मात्र से ही मन में नफरत पैदा हो जाती है. सोचती हूं कि क्या हिंदुस्तान में ऐसे भी पिता हैं जो केवल लड़कों के जन्म को खानदानी प्रतिष्ठा समझते हैं. □

ससुराल की जामुन

▣ लेखराम मृदुल

शादी के दूसरे वर्ष ससुराल पहुंचा. मकान के अहाते में जामुन का वृक्ष फलों से लदा हुआ था. दूसरे दिन, जब घर के सभी लोग गहरी निद्रा में लीन थे, मैं बड़े भोर ही उठा और पेड़ पर चढ़ गया. रात्रि में बारिश भी हुई थी. पैर फिसल रहे थे, फिर भी बड़े हौसले से पेड़ पर चढ़ा. ऊपर की शाखाओं में काली-काली बड़ी-बड़ी जामुन फली थीं. मैं उनका मोह संवरण न कर सका और उस शिरा की शाखा पर चढ़ गया. अभी मुश्किल से 20-25 जामुन लपक-लपककर तोड़ पाया था कि नीचे की शाखा पर अधिक जोर पड़ने से वह चरमरा कर टूट गयी. पैर की शाखा टूटते ही संयोग से ऊपर की मोटी शाखा, जो दूसरे हाथ से थामी थी, जकड़कर पकड़े रहा. नीचे निगाह पड़ते ही पूरे शरीर में थरथराहट समा

गयी. हिम्मत संजोकर ऊपर की शाखा में उल्टा पैर फंसाकर लटक गया और वहीं से ही जोर से चीख-पुकार मचायी. अंदर से मंझले साले मास्टरजी दौड़कर आये. देखकर स्तंभित रह गये. सीढ़ी लगायी गयी, तब जाकर नीचे उतरा. पर सीढ़ी के प्रत्येक पहिये पर पैर थरथराते रहे. □

आत्मिक संतोष

▣ राजेश कुमार अग्रवाल

धार (मध्य प्रदेश) प्रवास के समय की बात है. मैंने साइकिल का लाइसेंस नगरपालिका से बनवाया. साइकिल में आगे की ओर हैंडिल में कसवा दिया. चार-छः दिन बाद ही यह टोकन साइकिल से गायब हो गया. दुख से ज्यादा आश्चर्य हुआ. कार्यालय के चपरासी भी बेचारे हैरान थे. खासतौर से इसलिए कि आमतौर से वहां इस तरह की चोरियां होती ही नहीं हैं. उन्होंने इधर-उधर साइकिलों में टोकन खोजने का प्रयास भी किया पर वह नहीं मिला. चेकिंग तेजी से चल रही थी अतः मुझे अगले ही दिन दुबारा लाइसेंस बनवाना पड़ा. इस बार डर के मारे मैंने उसे साइकिल में नहीं कसवाया. दूसरे दिन जब छुट्टी के समय कार्यालय के बाहर से साइकिल उठाने को हुआ तो देखा कि एक छोटा-सा मुड़ा हुआ फटा लिफाफा कॅरियर में अटका हुआ है. पहले तो मन हुआ कागज होगा फेंक दूं. पर खोला तो हैरत में पड़ गया. उसमें एक-एक रुपये के दो नोट मोड़कर रखे हुए थे. चूंकि लाइसेंस दो रुपये में ही बनता था इसलिए यह समझते देर नहीं लगी कि यह उसी की क्षतिपूर्ति है.

हो सकता है कि चेकिंग की सख्ती के कारण कोई व्यक्ति मुश्किल में फंस गया हो और तात्कालिक रूप से वह टोकन दिखाकर उसने छुटकारा पा लिया हो. उसकी आत्मा ने यह कृत्य स्वीकारा नहीं होगा और उसने क्षतिपूर्ति करके ही संतोष प्राप्त किया होगा. आत्मिक संतोष प्राप्त करने की यह घटना मुझसे भुलाये नहीं बनती. □

प्रसाद या अवसाद

▣ मनोहरलाल विश्वास

मैं काशी गया था. वहां एक मंदिर में गया. पूजा के उपरांत प्रसाद वितरण प्रारंभ हुआ. एक पंडा प्रसाद बांट रहा था. अमीरों के हाथों में प्रसाद देते समय वह मृदु-मुस्कान बिखेरता और गरीबों के हाथों में प्रसाद देते समय भौंहें कुछ तन जाती थीं. प्रसाद वितरित करते हुए जब वह कुछ और आगे बढ़ा तो उसने सभ्य लिबास में, शानदार शाल ओढ़े एक सजीले किंतु प्रौढ़ावस्था के पुरुष को प्रसाद पाने के लिए बायां हाथ बढ़ाते देखा. उसकी त्यौरी में बल पड़ गये. उसने कहा, "आप सभ्य लिबास में हैं, आपको इतनी भी बुद्धि नहीं है कि भगवान का प्रसाद दायें हाथ में लिया जाता है, बायें में नहीं?" पुरुष चुप रहा. कुछ पल बाद बिना कुछ बोले उन्होंने शाल से ढका हुआ अपना हाथ दिखाया जो कटा हुआ था.

चादर के हटने से मैंने उनके कोट में कोई 'चक्र' देखा और आंख खुलने पर आंसू की कुछ बूंदें.

मेरे मन में इस बात की कचोट रह गयी कि वह वीर पुरुष बिना प्रसाद लिए चल दिया. काशी के उस भव्य मंदिर में भगवान के द्वार में उन्हें प्रसाद नहीं, अवसाद मिला. □

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा था

▣ जगदीश सिंह

मैथुन तो सब करते हैं, किंतु ज्योतिषियों की दृष्टि में काकमैथुन का कुछ अपना ही महत्व है. कहा जाता है कि इस मैथुन के दर्शन करनेवाला छह महीने से अधिक जीवित नहीं रहता. मुझे भी इस मैथुन के दर्शन ने एक दिन आसन्न मृत्यु की सूचना दे दी. चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं. अब क्या, अब तो सारी रंगी-रंगाई दुनिया से रुखसत होना पड़ेगा. किंतु मन में एक विचार आया, क्यों न किसी अच्छे ज्योतिषी से ग्रहशांति की युक्ति ज्ञात की जाय. कहीं जाप-वाप से मौत का इरादा बदल जाय.

उद्विग्नता और निराशा के उमड़ते सैलाब की स्थिति में मैंने ज्योतिषाचार्य डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी से अपने कर्तव्य कर्मों के लिए मार्ग दर्शन मांगा. भीतर की घबड़ाहट ने पत्रोत्तर की प्रतीक्षा नहीं करने दी. मैं बनारस पहुंचा.

सोलह अप्रैल 1978 की अविस्मरणीय सुहानी संध्या. पूज्यवर डॉ. हंस एंव बंधुवर डॉ. विमल के साथ श्रद्धेय द्विवेदी जी के यहां पहुंचा. चरण स्पर्श कर हम लोग ज्यों ही बैठे उन्होंने पूछा, "तुम्हारे पत्र का उत्तर मिला? उत्तर मैंने चौदह को ही लिख छोड़ा है." पत्रोत्तर प्राप्ति का धैर्य मुझमें कहां था. मैं तो यों ही चला गया था. वे फिर बोले, "पत्र तो बहुतेरे आये थे. किंतु अस्वस्थता के कारण उनका उत्तर नहीं दे सका. तुम्हारे पत्र का उत्तर इसलिए दिया कि पता नहीं तुम पर क्या बीतती होगी." फिर खिलखिलाते हुए बोले, "इससे कुछ नहीं होता. ये सब कॉमन वर्ड्स हैं. आखिर ये मैथुन के लिए कहां जायेंगे."

घर लौटने पर आचार्य जी का पत्र प्राप्त हुआ. उन्होंने लिखा था—"कई बार काकमैथुन भी देख चुका हूं. तुम्हारी तरह डरा भी हूं और सपने भी बुरे देखे हैं. कुछ नहीं होता. कोई चिंतन न करो, कम से कम मेरी जितनी आयु में तो कोई संदेह ही नहीं है... मन लगाकर पढ़ो... मैंने मन लगाकर पढ़ा और प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण भी हुआ. □

आते हुए लोग

एक सामान्य घर की लड़की को ससुराल के लोगों के सामने किन-किन कठिन परीक्षाओं से गुजरना पड़ता है और सफलता के लिए कितने संयम और सूझबूझ की जरूरत होती है, लज्जा और मर्यादा की दोधारी तलवार पर चलकर कैसे परिवारी जनों का मन जीतना पड़ता है, इस बात को कहती इस स्तंभ की चौंतीसवीं रचना—

अपने साथ लाये सामान की छीछालेदर होते देखकर उसकी क्या गति हो रही थी, यह वही जानती है. उसे लगा कि पिछले तीन दिनों में वह कुछ ज्यादा ही सयानी हो गयी है और जितने ज्ञान का लाभ उसे तीन दिनों में हुआ, उतना तो बी.ए. की डिग्री लेने तक नहीं हुआ था. कमरे में बिखरे सामान को बार-बार देख रही थी कि क्या खोट है इन सामानों में, जिसकी वजह से वह तीन दिनों में ही ऐसी हीन हो आयी है. कोई गैलरी में खड़ा बतिया रहा था, "समान-वमान छोड़िए बहनजी, कैश कितना मिला है?"

"कैश देने की हस्ती है?" बोलने का लहजा सुनकर लगा जैसे किसी ने कानों में पिघलता शीशा डाल दिया हो, "जो बारात का खर्च तो दे नहीं सका, वह तिलक क्या देगा?" नीली का सारा अस्तित्व क्रोध से सुलगने लगा. यह नारी की भी कैसी नीच जाति है? एक स्त्री को दूसरी को जलील करने में कितना मजा आता है? यदि आप सहानुभूति नहीं दर्शा सकतीं, दया नहीं बरत सकतीं, ढांढस नहीं दिला सकतीं, तो चुप तो रह ही सकती हैं. क्रोधावेश में उसके दांत भिंच गये.

"बहू का पिता क्या करता है?"

"मास्टर है, छोकरों को पढ़ाता है और क्या करता है? चार बेटियां हैं. 12-14 सौ वेतन मिलता होगा.

तमाशाई

वीना सिंह

इतने रुपये में आदमी क्या बचायेगा, क्या खायेगा?" अंदर की झुंझलाहट शब्दों में भर सास बोलती जा रही थीं.

"अरे बहनजी, स्वप्न में भी ऐसा नहीं सोचिएगा. ये मास्टर जितना कमाते हैं, डॉक्टर, इंजीनियर क्या खाकर कमायेंगे? जितनी तनख्वाह नहीं, उसका चौगुना तो ट्यूशन से कमा लेते हैं."

नीली अपने को एक नयी दुनिया में ही पा रही थी. शादी के साथ-साथ तो उसकी दुनिया को बदलना ही था, पर इस दुनिया के लोग अपने द्वारा जाने-सुने लोगों से इस कदर भिन्न होंगे, उसे नहीं पता था. अपनों से कट परायों से वह जुड़ने चली थी, पर ये पराये ऐसे कि उसकी मिट्टी पलीद करने पर तुल पड़े हैं.

सफाई में चीखना चाहा, पर आवाज थी कि अंदर ही घुटकर रह गयी. बिखरे सामान को वह पुनः घूरने लगी है. घूरते-घूरते मां द्वारा सुनाई वह कहानी भी याद आने लगी, "एक राजा था. उन्होंने अपनी लड़की की शादी में सब कुछ दिया, पर लड़की की सास कहती चलती कि सब कुछ तो दिया, परंतु सोने का टेवकन (ईंट का छोटा टुकड़ा, जिसका प्रयोग लुढ़कने वाले बर्तनों को लुढ़कने से रोकने के लिए किया जाता है.) तो मिला नहीं." कहानी याद कर नीली के अधर विरक्ति में टेढ़े हो आये. कितना भी दे दो, लड़केवाले संतुष्ट कहां होने के?

कई बातें मन में आती रहीं, फिर वह सामान समेटने लगी. कमरा अव्यवस्थित हो गया. यह तो तीन दिनों से रोज ही हो रहा था और वह रोज ही व्यवस्थित किया करती थी. सामान समेटते-समेटते बरबस ही उसकी दृष्टि कोने में रखी आलोक की तस्वीर पर पड़ गयी. कुछ देर के लिए आलोक की बड़ी-बड़ी आंखों में ऐसे खो गयी कि सारे दुःख गायब हो गये. आलोक की पूरी छवि आंखों के सामने खेल गयी.

जब से विवाह निश्चित हुआ, तब से ही जैसे एक नियम-सा बन गया था आलोक के प्रतिकूल बोलने का. जितने मुंह उतनी बातें. तब हद हो गयी थी जब अपनी ही मौसी ने पूछा था, "नीली, तुमने लड़का देखा है या नहीं? यदि नहीं देखा है तो देख ही लो, क्योंकि मैंने सुना है कि उसका चरित्र अच्छा नहीं है. उसकी दोस्ती गलत लोगों से है. तुम्हारे पापा पता नहीं क्या देखकर इतनी हड़बड़ी मचाये हुए हैं." नीलिमा अपने संयम को रोक न सकी थी, "ठीक कहती है मौसी, लड़का तो मैंने नहीं देखा है, पर सोच रही हूं कि अब देख ही लूं."

इतनी-सी बात पर घर में बवंडर-सा खड़ा हुआ. लगा कि हर तरफ भूरी, काली आंधी-सी उठने लगी है.

"अरे भाभी, भइया को नजर लगाकर ही छोड़ोगी क्या? यह तो बड़ी कंडम फोटो है, अब असली रूप देखोगी तो शायद बेहोश ही हो जाओ." छोटी ननद के अचानक प्रवेश कर मजाक के लहजे में कहा तो वह अपने में लौट आयी.

"अच्छा भाभी, अब झट से तैयार हो जाओ. तुम्हें देखने बहुत से लोग आ रहे हैं."

"मुझे देखने?" वह तो भूल ही गयी थी कि वह नयी-नवेली दुल्हन है.

"तुम्हें नहीं तो क्या मुझे?"

"लेकिन मैं तैयार हूं."

रिम्मी हंसने लगी, "तुमने तो कुछ गहने पहने ही नहीं. बड़ी भाभी की तरह गहने पहनो न." हर बात में वह बड़ी भाभी की बात ले बैठती थी, "जब बड़ी भाभी शादी कराके आयी थी, तब उनके शरीर पर इतने गहने थे, इतने गहने थे कि उसका शरीर गहनों में ही छिप गया था. भाभी आपके शरीर पर उतने गहने क्यों नहीं?"

रिम्मी को जवाब देने की बजाय ड्रेसिंग टेबिल के सामने जा खड़ी हुई. गले में पतली-सी जंजीर, कान में टॉप्स, हाथ में पतली-पतली एक-एक चूड़ी और एक नग की लाल अंगूठी. कुल इतना ही उसके हिस्से में आया था. मां के पास जितने जेवर थे, उसके पांच

हिस्से लगे थे. चार बहनों के लिए तथा एक आने वाली बहू के लिए. उसे कुछ ज्यादा ही मिल गया था. पापा बोले थे, "पहली लड़की है. कुछ खास तो दे नहीं पा रहे, इसलिए इसके हिस्से के गहनों की मात्रा ही बढ़ा दें. और लड़कियों की शादी तक तो बबलू भी कमाने लगेगा."

इन कुछेक गहनों में ही उसका सांवला मुख सोने-सा चमक आया था. उसकी सुंदरता की किसने तारीफ नहीं की थी? इसी मुखड़े को लेकर विवाह के दूसरे ही दिन एक तूफान उठ खड़ा हुआ था. सभी रस्म प्रायः समाप्त हो चुके थे, केवल बिदाई शेष थी कि आलोक बिफर गया था कि वह बिना लड़की देखे बिदाई नहीं करायेगा. उसके ही परिवार के किसी एक ने चिट्ठी के माध्यम से उस तक पहुंचाया था कि लड़की किसी काम की नहीं. पापा आलोक के आगे घुटने टेके बोले, 'बेटा, ये लोग तो मुझे अपमानित करने पर तुले ही हैं. तू भी इनके बहकावे में आ गया?' किंतु आलोक तो पत्थर बन चुका था. बात इस पर तय हुई कि आलोक के छोटे एवं बड़े भाई लड़की देख लेंगे.

"नीलिमा, हम लोग अब अपने-अपने घर लौट रहे हैं. देखो, चिट्ठी लिखना." उसके कंधे पर अपने हाथ रखते हुए बड़ी ननद रोमा बोली थी. नीली पागलों की भांति उनका चेहरा निहारने लगी. . . .सच, इतने प्रेम से

बोली हैं या. . . .

"अरे ऐसे क्या देख रही हो? मेरा थोबड़ा सर्कस के जोकर की भांति लग रहा है क्या?" वह गुस्से में बोली.

"नहीं, दीदी," उसने अक्सर ननद-झोंक की कहानी सुनी थी.

"अम्मा, यह क्या कर रही हो? नीली की साड़ी क्यों निकाल रही हो? उसके बक्स में तो वही एक साड़ी है, जो किसी खास मौके पर पहनी जा सकती है और उसे ही तुम मुझे देने के लिए उद्यत हो." उसकी सास उसके बक्से से कोई साड़ी निकाल रही थी. रोमा वहीं से चिल्ला पड़ी.

"तो क्या हुआ? कौन-सा हीरा-मोती जुड़ा है कि उसकी सांस रुक जायेगी?"

सच, उसके बक्स में एक वही अच्छी एवं कीमती साड़ी थी. दूकान तक अम्मा, पापा के साथ वह गयी थी. साड़ियों के ढेर से बार-बार उसी साड़ी को उठाती, फिर रख देती. उसके पापा काफी देर से यह देखते रहे तो बोले, "तुझे यह साड़ी पसंद है तो इसे भी अलग करवा देता हूं."

"नहीं पापा, मैं तो यूं ही इसकी कढ़ाई देख रही थी." अपने लालच को जबंदस्ती दबाती हुई वह बोली थी. किंतु बाप तो बाप ही होता है. पापा ने लेने की जिद की तो अम्मा बोल पड़ीं, "बड़ी महंगी है. छः सौ में तो तीन अच्छी-अच्छी साड़ियां हो जायेंगी."

"मन ही तो है. कौन बार-बार उसकी शादी करनी है?" पापा उसकी तरफ से बोले थे.

अंत में जीत पापा की हुई थी. अब उसी साड़ी पर सास की नजर है. रोमा के मना करने पर जाने क्या-क्या बड़बड़ाती रही. उसके लिए वातावरण इतना असह्य हो आया कि यही इच्छा हो रही थी कि साड़ी में ही आग लगा दे या सभी को कमरे से बाहर धकेल दे, किंतु व्यवहारिकता-वश बोल पड़ी, "ले लीजिए न दीदी, मां जी का मन यदि इसी में रहता है तो क्यों इंकार कर रही हैं?"

"नहीं नीली, मेरी सास भी जब मेरी पसंद की साड़ी अपनी बहन की लड़की

▣बीना सिंह

▣बाबा स्व. श्री त्रिभुवन नारायण सिंह का सान्निध्य कुछ नया करने के लिए प्रेरित करता रहा है. बी. ए. की छात्रा. लेखन की शुरुआत अभी हाल में ही की है. कुछ रचनाएं आकाशवाणी से प्रसारित. किसी बड़ी पत्रिका में प्रकाशित होने वाली यह पहली रचना है.

को दे रही थी तो संकोचवश मैं भी हां में हां मिला रही थी, लेकिन वास्तव में मेरा मन कितना रो रहा था, इसे तो मैं ही जानती हूं."

रोमा अपनी मां की ओर मुखातिब होती हुई बोली, "अम्मा, जो बक्सा तुम्हारे लिए आया है, मैं तो उसी की साड़ी लूंगी."

"सास का बक्सा तो आता ही है न्यौता-हकारी के लिए." रोमा के ऐसा कहने पर सास बड़बड़ाती हुई कमरे से बाहर चली गयी.

छुट्टियां खतम हो चली थीं, इसलिए आलोक भी रोमा के साथ ही जा रहा था. नीलिमा आज ज्यादा ही उदास थी. आलोक चला जायेगा तो मन में जमती गलत धारणाओं का निवारण भी कौन करेगा? यहां तो सब एक से एक हैं.

नीली को आलोक पर गर्व था. उसकी महानता का प्रमाण उसे प्रथम दिन ही मिल गया था. सच, आलोक पूजनीय है. जिस समय आलोक ने कमरे में प्रवेश किया था, उस क्षण वह बहुत उद्विग्न-सा दिख रहा था. पैंट की जेब में हाथ डाले कमरे में चहलकदमी करते हुए उसने पूछा था, "बता सकती हो नीली, दुनिया की सबसे गंदी चीज क्या है?" उसके उत्तर का इंतजार किए बिना ही वह बोला, "वह चीज है राजनीति. मेरा घर भी राजनीति का भयंकर अखाड़ा बन चुका है. इसका मुझे आभास नहीं था. मुझे यह ज्ञान अपने विवाह में ही हुआ. यह ऐसा कुचक्र है नीली, कि महान से महान लोग भी इसमें फंस जाते हैं." आलोक की बातों से ऐसा लग रहा था कि मन का सारा गुबार अभी निकला नहीं है. थोड़ा रुककर वह पुनः बोला, "कल्पना करो नीली, एक अच्छे-खासे आदमी को पागल कहा जाये और यही बात बार-बार दोहरायी जाये तो क्या वह व्यक्ति सचमुच पागल न हो जायेगा? अगल-बगल के लोग रोज ही मां के पास आते थे और पाठ पढ़ाते थे कि दहेज लेना तो आजकल का फैशन और आवश्यकता है. शादी की असली शान-शौकत है. बिना दहेज की शादी बिना नमक के भोजन जैसी. सीधी-सादी मां उनके कुचक्र में फंसती गयी."

"दहेज तो अनपढ़ बेटों के बाप भी मांगते हैं. आप तो. . . " होंठ दबाते भी मुंह से यह वाक्य निकल गया था.

"दहेज नहीं मांगता है नीली." समझाने की असमर्थता में शब्दों को खींचते हुए वह बोला, "वह भीख मांगता है. एक भिखारी गिड़गिड़ाकर मांगता है 'बाबू दस पैसे' और हम हैं कि अकड़कर मांगते हैं. पचास हजार . . इसमें और उसमें कोई अंतर नहीं है. वह हमारे स्तर से काफी नीचे है, इसलिए दस पैसे मांगता है. हम उसकी अपेक्षा काफी ऊंचे हैं, इसलिए पचास हजार मांगते हैं."

"यह तो आज का प्रचलन है," धीरे से कहा था उसने.

"नीली, तुम इस कोढ़ को प्रचलन कहती हो?" आश्चर्य से भौंहे टेढ़ी हो गयी थीं, बड़ी-बड़ी आंखें सिकुड़कर छोटी हो गयी थीं, "गलत चीजों को प्रचलन में लाना कहां की बुद्धिमानी है? आजकल तो जलाने का प्रचलन है. बलात्कार का प्रचलन है. राह चलते

व्यक्ति का खून कर लूटने का प्रचलन है. इन गलत प्रचलनों को स्वीकार कर लेना चाहिए क्या?"

"क्या सोच रही हो नीली?" बड़ी ननद श्यामा एवं उससे छोटी ननद रोमा ने उसे पुनः विचार में निमग्न होते देख पूछा था.

"कुछ नहीं दीदी, आप लोगों के जाने से सारा घर काट खाने को दौड़ेगा."

"हम लोगों के जाने से या आलोक के जाने से?" मजाक करती हुई बड़ी ननद श्यामा ने पूछा था.

"आलोक कहां है?" सास ने अकस्मात कमरे में प्रवेश करते ही पूछा. आज कुछ ज्यादा ही क्रोधित दिखाई दे रही थीं.

छः माह पूर्व वर-रक्षा में चढ़ी चांदी की थाली ननदों के सामने पटकती हुई बोलीं, "आकर फैसला करे कि यह छटांक भर की थाली छोटी को दें या बड़की को."

"अम्मा लड़ाई क्यों करवाना चाहती हो. रोमा तो अपना नेग ले चुकी है. यह नेग तो मेरा है. क्यों रोमा, तुमने ही कहा था न कि यदि आलोक की शादी में चांदी की थाली चढ़ती है तो दीदी तुम लेना और द्वार की छेकाई का रुपया मैं लूंगी." श्यामा ने कहा.

"हां दीदी, यही तय हुआ था."

सास के इस तुच्छ व्यवहार से वह बुरी तरह तड़फ रही थी. सास द्वारा पटकी थाली अब श्यामा के हाथ में थी, जिसकी नक्काशी को वह गौर से निहार रही थी. इस थाली के लिए मां को अपनी डेढ़ भर की जंजीर तुड़वानी पड़ी थी. डेढ़ भर की जंजीर तुड़वाकर मां ने एक पतली-सी जंजीर बनवाई और बाकी पैसों से चांदी के बर्तन, थाली, गिलास आदि विवाह के लिए खरीद लिये. विवाह से ही संबंधित एक और घटना याद आ जाती है—वर रक्षा के दिन पापा, दोनों बड़े पापा एवं दोनों चाचा को बुला लाये थे. छोटे चाचा आते ही नाक-भौं सिकोड़ने लगे थे, "भइया, क्यों नीलिमा को चूल्हे में झोंक रहे हैं?" पापा उस समय नहीं बोले थे. तब दोनों बड़े पापा लोगों ने भी कुछ इसी तरह की बात कही थी. पापा तब बड़े शांत स्वर में बोले थे, "मैं आज ही शादी कैंसिल कर देता हूं. आप लोग बस पांच-पांच हजार की मदद कर दें. मैं वादा करता हूं कि मरने से पहले ब्याज सहित चुका दूंगा." पापा की बात सुनकर जो घर अब तक मछली बाजार बना हुआ था, वह बियाबान जंगल बन गया. सब एक साथ सरक गये थे.

नीली सोच रही थी, यदि वे पापा को थोड़ी मदद कर देते तो उसकी यह दुर्गति न होती. क्या वे लोग मदद नहीं कर सकते थे? किसकी आर्थिक स्थिति खराब है? बड़े पापा वाराणसी में ही सिविल इंजीनियर हैं, छोटे पापा टाटा कंपनी में फील्ड आफीसर, पापा से छोटे पर्सनल मैनेजर और उनसे छोटे ठेकेदार हैं. सगा भाई भी अपना नहीं होता है. यह हमारा इतिहास बोलता है. जितना प्रेम सगे भाइयों में बचपन में होता है. उतना यदि बाद में भी देखने को मिले तो भाग्य की ही बात है.

औरतों एवं छोटी-बड़ी लड़कियों का रेला उसे देखने पुनः आ धमका. उनमें कुछ तो वही थीं, जो पहले आ चुकी थीं, पर कुछ नयी थीं. औरतें कितनी क्षुद्र बुद्धि होती हैं, इसका ज्ञान उसे हो चुका था. पहले तो कपड़े का एक सूत पकड़ेंगी, फिर खींचना शुरू करेंगी, फिर पूरा ही उधेड़ देंगी. धागा वही पुराना. सीमा का उल्लंघन होते देख नीली की झुकी पलकों में क्रोध की चिंगारी भड़क आयी. उसके संयम का बांध टूट गया. "यह सब आप लोग किसलिए कह रही हैं? यही दिखाना चाहती हैं न कि आप मेरी हितैषी हैं. हितैषी तो उसे नहीं कहते, जो किसी को अपने कर्त्तव्य एवं घर से विमुख होने का उपदेश दे. रही मेरी सास की बात, सास तो मां के समान होती है. मां अपने बच्चे का हित समझकर ही कुछ बोलती है. आप यह क्यों भूलती हैं कि मां की गाली बच्चों के लिए आशीर्वाद के समान होती है." नीली की बुलंद होती आवाज से घर के सारे लोग उसके कमरे की ओर दौड़ पड़े. इसका आभास होते ही नीली सकपका गयी थी.

एक अपराध-भाव से उसकी गर्दन झुक गयी. झुके नेत्रों ने कई जोड़े पांव दरवाजे पर देखे, फिर उन पांवों को वापस लौटते भी देखा. रह गये केवल बिवाईवाले पांव. चार दिनों में इन पैरों ने शायद ही कभी विश्राम किया हो. हमेशा चलते रहनेवाले पांव इस समय स्थिर कैसे? इन पांवों को कभी नहीं भूल सकती वह. उन दोनों में बिछुए भी दो रंग के थे. ये पांव थे उसकी सास के. इन पांवों की मल्लिका की आंखें भी भर आयी थीं, शायद जीवन में पहली बार. □

● के-67/111, नयी बस्ती, ईश्वर गंगी, वाराणसी–221001 (उ.प्र.)

चलते-चलते

सामान्य चहल-पहल वाली सड़क की एक दूकान पर सूटेड-बूटेड एक व्यक्ति ने आकर दुकानदार से कहा, "श्रीमान् जी, मैं एक फोन करना चाहता हूं."

"कहां?"

"यहीं, लोकल."

"कर लीजिए."

फोन करने के बाद उस व्यक्ति ने झटके से एक का नोट पर्स से निकाल कर दुकानदार की ओर बढ़ाया. "नहीं, रहने दीजिए."

"अरे, हमारी दिल्ली में... अपनों से भी... फिर हम तो अनजाने हैं."

"लेते होंगे, यह पिछड़ा जिला है, यहां के लोग सभ्यता में पिछड़े हैं."

—राजेश मेहरोत्रा

▣ विशेष आयोजन : इराक पर रिपोर्ताज

बारूद की छांव में पनपती कला और मरजीना का देश

▣ नासिरा शर्मा

● मरजीना की मूर्ति के साथ लेखिका

ईरान-इराक युद्ध! ... यह और इस तरह के आंतरिक अथवा बाह्य-युद्ध दुनिया में अनगिनत जगहों पर लड़े जा रहे हैं और व्याप्त होती जा रही है एक अजीब-सी अशांति पूरे संसार में. पढ़िए, इसी अशांति के दुष्परिणामों को रेखांकित करता हुआ रिपोर्ताज कि धर्मांध होकर अपने-आपको युद्ध में झोंक देने पर खुद को कितना नुकसान उठाना पड़ता है और दूसरे भी किस कदर दुविधा में पड़े रहते हैं—

इराक जैसे-जैसे करीब आ रहा था मेरे दिल में अजीब-सी बेचैनी करवटें बदलने लगी थी... कैसा होगा इराक देश? मुझे तो वहां की भाषा भी नहीं आती है, क्या करूंगी? ... पिछले चार सालों में ईरान में सुनी बातें दिमाग में गूंजने लगी—'सद्दाम हुसैन खरअस्त (गधा) है, सद्दाम हुसैन काफिर अस्त है' वगैरह-वगैरह. मेरे अन्य पत्रकार साथी जो पहले इराक जा चुके थे बड़े विस्तार से अपने अनुभव और इराक के रहन-सहन के बारे में बता रहे थे, मगर मेरी जिज्ञासा थी कि भयमिश्रित रोमांच से हमकिनार हो रही थी. आठ-दस लोगों का यह भारतीय काफिला जिसमें पांच पत्रकार, चार मौलवी और एक संसद सदस्य थे, इराकी हवाई जहाज में बैठे बड़ी बेतकल्लुफी से घुल-मिलकर बातें कर रहे थे, मगर मेरा मन बार-बार तीन बार देखे हुए ईरानी युद्ध-क्षेत्रों की तरफ मुड़-मुड़ जाता था जहां पर इराकी बम गिरे थे. इराकी पायलटों की लाशें और जले हवाईजहाज देखे थे. टी.वी. पर इराकी युद्धबंदियों के इंटरव्यू सुने थे. उनकी बातचीत, वहां का माहौल सब कुछ दिल व दिमाग में चक्कर लगा रहे थे. ईरान की दीवारों पर लिखे अक्षर उभरने लगे—'मर्ग या पीरूजी!' (मौत या जीत)

हवाई जहाज से उतरकर जब हम वी. आई.पी. लॉज में पहुंचे तो 20-25 इराकी मौलवी व अफसर हमारे अभिनंदन के लिए खड़े थे. तीन दिन बाद, चौदह अप्रैल से 'इंटरनेशनल पापुलर इस्लामिक सेमीनार' आरंभ होनेवाला था, उसी में सम्मिलित होने के लिए हम इराक आये थे.

होटल तक जाने का रास्ता रोशनी से भरा हुआ था. मुझे ताज्जुब हुआ कि यह कैसी राजधानी है जहां पर युद्ध के जमाने में दीवाली मनायी जा रही है. रोशनी से नहायी मस्जिदें और फव्वारे देखकर ईरान की काली रातें याद आयीं जहां पर सात बजने के बाद चिराग जलाना मना था. कार में इराकी गाने का कैसेट चल रहा था और ड्राइवर बहुत मग्न होकर उस संगीत पर स्वयं को अभिव्यक्त कर रहा था. ईरान में इस्लामी सरकार आने के बाद नाच-गाना पाप समझा जाने लगा था. जिसकी कार में रेडियो कैसेट होता उस पर जुर्माना होता और कभी-कभी रात भर कोतवाली में रखकर उसकी मरम्मत भी होती थी.

रोज नये-नये मौलवी संसार के कोने-कोने से आ रहे थे. तीन सौ

मौलवियों, दो सौ इस्लामी संस्थाओं के अध्यक्ष और पचास पत्रकारों के बीच मैं तन्हा महिला थी. चारों तरफ काली, सुरमई, सफेद अबा-कबा फहराते ऊंची टोपी के नीचे लंबी-घनी काली-सफेद दाढ़ी को सहलाते हुए हर कद, हर उम्र के मौलवी अलरशीद जैसे होटल में चहलकदमी कर रहे थे. इनके बीच मैं सहमी मगर हर प्रकार की घटना और दुर्घटना को झेलने के लिए आमादा खड़ी थी. ईरान के दुखदायी अनुभवों की याद अभी ताजा थी और मैं इंतजार में थी कि देखें यहां का समाज व वातावरण औरत का क्या हुलिया बनाते हैं?

बगदाद में स्थित पवित्र-स्थान 'काजमैन' और अबू-हनीफा का मजार देखने हम सब साथ गये. दोनों इमारतों पर बनी जाली, नीली काशीकारी और सोने के गुंबदों का जवाब न था. इन यात्राओं में मौलवियों से परिचय हुआ. मैं ईरान जा चुकी हूं और खुमैनी से लेकर आम इंसान से मिल चुकी हूं, इस इत्तला ने सबकी रुचि बढ़ा दी. मेरा भय जाता रहा और सेमीनार आरंभ होने से पहले इन तीन दिनों में खूब लंबा वार्तालाप चला. हर जगह मैं बाल खोले साड़ी पहने हुए गयी. इस बात का अहसास हो गया कि इराक इस्लामी देश होने पर भी प्रगतिशील और स्वतंत्र विचारों का है. मगर यह स्वतंत्रता अलरशीद होटल को रास न आयी. तीसरे दिन मद्धिम धुनों की संगीत लहरी की जगह होटल में कुरानखानी की आवाज गूंजने लगी. डिस्को, कैसिनो और फ्लोर-शो बंद हो गये. बॉर में ताला पड़ गया. ओबराय जो दिल व जान से इस होटल को गुटनिरपेक्ष देशों के सम्मेलन के लिए तैयार कर रहे थे और उसके स्थगित होने के बाद भी उसकी सजावट व इंतजाम में तन्मय थे, खामोश रह गये. मौलवियों के आगे क्या कहते? शाम के समय हमें समाचार मिला कि सारे पत्रकारों को अन्य होटल में जाना है. बात कुछ समझ में नहीं आयी. तभी किसी ने बताया कि कल रात मौलवियों ने एक गोपनीय बैठक बड़े हॉल में की थी, जिसमें इराकी समाज की स्वतंत्रता पर आलोचना और नैतिकता पर जोर दिया जा रहा था. अंत तक यह बात साफ न हो सकी कि वह मौलवी किस देश के हैं, जो कट्टरवादिता और अंधविश्वास को रद्द करने के लिए इस सेमीनार में लेख पढ़ने आये हैं, और उसी को प्रोत्साहन देने का उत्साह दिखाने लगे हैं!

दूसरा दिन, सेमीनार का पहला दिन. हम सब शानदार हॉल में बैठे थे. तभी हैदराबाद के मौलाना मेरे पास से गुजरे और बोले, "आपा, आपको एक भरपूर कुर्ते की जरूरत है... हिंदुस्तान लौटकर पूरी आस्तीन के कपड़े पहने." उनके बदले स्वभाव से मैं विचलित हुई, तभी अर्द पत्रकार बोल उठे, "हमें तो इनके कपड़ों पर एतराज नहीं करते हैं... काला साफा, पीले-सफेद दुपट्टे, सारे बदन पर लपेटे झंडा बने घूम रहे हैं, यह सेमीनार है फैंसी शो नहीं." चेहरों से गंभीरता धुली, तभी एक घाना के मौलवी जालीदार तिकोनी चादर कंधे पर डाले गुजरे. वही साहब चहके, "यह मेजपोश ही पहनकर आ पहुंचे हैं."

"ये सब खुमैनी को दुआ दें जिसने इनका सिक्का फिर चलवा दिया है. यदि इस्लाम की बात न होती तो इस ईरान-इराक युद्धविराम में इन मौलवियों का क्या महत्त्व होता." मैंने धीरे-से कहा, "वह तो है. इस्लाम की तारीख में मौलवियों ने इतनी विदेशी यात्राएं कभी नहीं की होंगी जितनी इस युद्ध ने करा दी हैं. कभी ईरान जाते हैं कभी इराक, कभी मुरक्को, तो कभी कुवैत, तो कभी साऊदी अरब, तो और कभी सोवियत लैंड हो आते हैं."

"पिकनिक है, मौलवियों की पिकनिक... युद्ध और युद्धविराम के बारे में सिर्फ खुमैनी को सोचने का हक है बाकी सारा धंधा चलता है."

सेमीनार की गतिविधि आरंभ हुई, बहुत कुछ खुलकर सामने आया, जैसे पढ़े गये परचों में यह बात साबित की गयी थी कि आक्रमणकारी ईरान है. उसमें तथ्य यह पेश किया गया था कि इस्लाम-निर्यात का जो आंदोलन खुमैनी सरकार ने आरंभ किया था उसने हर देश में अशांति ही फैलायी थी, विशेषकर उन देशों में जिनकी आबादी 'शिया' थी. इराक में 65 प्रतिशत शिया हैं. इसी बात को लेकर खुमैनी का कहना है कि शियों पर एक काफिर हुकूमत करे, यह कहां से अन्याय है? खुमैनी ने 2500 वर्ष पुरानी ईरानी मोनारकी का चिराग गुल किया था. इस ऐतिहासिक घटना ने उन्हें आत्मबल की चरमसीमा पर पहुंचा दिया और उन्होंने खुले शब्दों में कहा था कि दुनिया के बादशाह खबरदार हो जायें.

● कर्बला : ऐतिहासिक शहर का विहंगम दृश्य

इस ऐलान से सबसे अधिक विचलित साऊदी-अरब के बादशाह हुए थे. मध्यपूर्वी अरब देशों में 'अरब एकता' का नारा भी फिलिस्तीनी समस्या के संदर्भ में बेकार लगता है और ईरान-इराक युद्ध में भी सीरिया, लेबनान का व्यवहार खुमैनी का खुला समर्थन करना कहीं भी 'पान अरब' की पुष्टि नहीं करता है. सीरिया का इराकी पेट्रोल-पाईप-लाईन का रोकना, दजला के पानी को अवरुद्ध करके कुछ इराकी इलाकों को सूखे की कठिनाई से दो-चार कराना अपने-आप में 'पान अरब' के प्रति विद्रोह है, जो इस बात को साबित करता है कि हर अरब देश में अपनी डफली अपना राग है. अब इराक का वार्षिक युद्ध व्यय 12 मिलियन डालर है, यदि इस समय साउदी अरब व कुवैत साथ न देते तो इराक की अर्थ-व्यवस्था का ठचरा बैठ जाता. यह दूसरी बात है कि ईरानी इस्लामी-निर्यात और सद्दाम हुसैन को लगातार चुनौती देने के पीछे खुमैनी की सरकार का हाथ रहा है, मगर यह भी सही है कि सद्दाम हुसैन को युद्ध के लिए आमादा करने में साऊदी अरब और अन्य शक्तियों का सीधा न सही, मगर थोड़ा-बहुत हाथ रहा है.

अब्बासी काल—जो खलीफाओं का काल था, उसके बाद आज 'बास सोशलिस्ट पार्टी' के समय में इतना बड़ा इस्लामी बुद्धिजीवियों का मजमा लगा था. संसार भर के मौलवी आये थे, जो इराक की पुरानी संस्कृति व सभ्यता की याद ताजा कर रहे थे.

इराक की राजधानी बगदाद वास्तव में इमाम बाड़ों और मस्जिदों का शहर है. अब्बासी काल (जब इस्लाम का आगमन हुआ) के दूसरे खलीफा मंसूर (ईसा पूर्व 750-775) ने बहार की एक शाम को दजला के पश्चिमी किनारे पर बसे सासानी गांव को देखा (762 ईसा पूर्व) और एक शहर की बुनियाद डालने का निर्णय ले लिया. उस शहर को बनने में चार साल लगे. एक लाख कारीगर, मिस्तरी कलाकार सभी मुस्लिम देशों से बुलाये गये थे. इस शहर का नाम फारसी के दो अक्षरों से मिलकर बनाया गया. 'बगदाद' अर्थात खुदा द्वारा दिया गया बाग या स्वर्ग. इसे अरब लोग 'शांति का नगर' नाम से भी पुकारने लगे. यह शहर कहानियों में हारुन रशीद (पहले खलीफा) के नाम से जाना जाता है.

वास्तव में बगदाद शहर खलीफाओं (मोहम्मद साहब को माननेवाले) का शहर है और इन्हीं खलीफाओं की जगतप्रसिद्ध कहानी 'अलिफ लैला' है जो कि न केवल संसार भर की भाषाओं में अनूदित हो चुकी है बल्कि उसने बहुत सारे रस्मों-रिवाज की बुनियाद भी डाली है, जैसे लगभग सारे योरोप में रस्म है कि शराब पहले मर्द चखेगा फिर बैरा इजाजत लेकर दोनों गिलास भरेगा.

सुमेर की मेसोपोटामिया, बेबीलॉन, असीरिया और अब्बासी काल के बाद टर्कों की चार सौ साल तक हुकूमत और इसके बीच में कई बार ईरान का प्रभाव भी. 1971 में टर्कों हुकूमत का हटना और पहली बार रिपब्लिक का का बनना, जिसने इराक के बिखरे समाज को समेटने का प्रयत्न किया.

बगदाद, एक आधुनिक शहर है. गगनचुंबी अट्टालिकाओं के बीच मस्जिदों का वजूद इस बात का द्योतक है कि लोग अपनी संस्कृति व सभ्यता को संजोकर रखना जानते हैं. बगदाद में अदिमिया और काजमैन पवित्र-स्थल हैं, जो बारह इमामों में से दो की आरामगाहें हैं. नीली काशीकारी, सोने का गुंबद, अंदर शीशेकारी और जाली का काम अद्‌भुत है. बगदाद शहर को संवारने में इमाम अब्बू हनीफा ने बहुत साथ दिया था. उनकी कब्र पर बनी इमारत भी आर्किटेक का बेजोड़ नमूना है.

पूरे बगदाद में बड़े-बड़े पुराने दरवाजे हैं, जिनके नाम चांद दरवाजा, काला दरवाजा, खुरासान दरवाजा, बेदे-मजनूं दरवाजा, बसरा दरवाजा वगैरह-वगैरह हैं. इनमें से केवल एक दरवाजा बचा है. बगदाद की दो प्रसिद्ध सड़कें हैं. रशीद और इन. सादून सड़क पर अब्बासी पैलेस है, जिसका दरवाजा दजला की तरफ है. सुमेर होटल, अलीबाबा रेस्ट्रां और सिंदबाद होटल भी हैं.

हारून रशीद बादशाह के समय में इराक ने अपना सुनहरा समय बिताया है. बगदाद दुनिया का धनी शहर गिना जाने लगा था. शत्तअरब का सीना पानी के जहाजों से भरा रहता था. चीन से चीनी मिट्टी के बर्तन, मलाया और हिंदुस्तान से मसाले और रंग, टर्की से गुलाम और लाजवर्द, पूर्वी अफ्रीका से हाथी दांत और स्वर्ण चूर्ण, साऊदी अरब से मोती और हथियार.

उस समय अरब अपने चेक बगदाद बैंक में जमा करते और भुनाते थे.

जुहरे आतिया वास्तव में किसान हैं और 'हेरिटेज' के डायरेक्टर हैं. वह शाम जो उनके घर पर गुजरी, उसने इराक की तारीख ही नहीं बल्कि कला और साहित्य को भी जिंदा किया.

जुहरे एक बहुत अच्छे चित्रकार भी हैं, फोटोग्राफर भी और पुरातन चीजों को परखनेवाले दक्ष और इन सबके बाद सूफी संगीत पर नाचनेवाले एक कलाकार भी हैं.

जुहरे अतिया का घर स्वयं अजायबखाना था. दीवार पर बसरा का पुराना दरवाजा लटका हुआ था. अलम, तलवार, कपड़े, मूर्ति, गुलदान विभिन्न रोशनी के प्रभाव! कहीं से भी वह घर वर्तमान वातावरण का नहीं लग रहा था. यह बात मेरे लिए हमेशा सुखद आश्चर्य का कारण बनी रही है कि मध्यपूर्वी व ईरान के बुद्धिजीवी भारतवर्ष को एक स्वप्नलोक के रूप में आत्मा और विचार के धरातल पर जीते हैं.

उनका प्रेरणा-स्रोत भारत रहा है.

इस्लामी पापुलर सेमिनार का आज तीसरा दिन था. कार्यक्रम आरंभ ही हुआ था कि हॉल का दरवाजा एकाएक खुला और सद्दाम हुसैन आठ-दस फौजी अफसरों के साथ दाखिल हुए. इराक के राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन के बारे में काफी सुन रखा था कि वह बेधड़क बिना इत्तला के गांवों, वहां के देहातियों के घरों, कारखानों और स्कूलों में चले जाते हैं और बड़े आराम से आम आदमी से बात करते हुए उनका दुख-सुख सुनते हैं. इस समय स्टेज पर जाकर बैठ गये और बड़े विनम्र स्वर से बोलना आरंभ किया--"इराक हमेशा युद्ध विराम के लिए तत्पर रहा है. ईरान के मुकाबले इराकी क्षेत्र-फल, जनसंख्या और प्राकृतिक स्रोत एक चौथाई हैं. सोचने की बात है 54 मिलियन जनसंख्यावाले देश के सामने 14 मिलियन जनसंख्या की बिसात ही क्या है! 15 वर्ष तक खुमैनी साहब इराक के मेहमान रहे हैं और आज फिर इराक का सौभाग्य होगा कि वह हमारे अतिथि बनें. आप सभी धर्म के रक्षकों के सामने ईरान-इराक की समस्या को आकर सुलझा लें या फिर हमें इजाजत दें कि उनके पास हाजिर होकर इस युद्ध के बारे में उनसे सुझाव और विचार लें. आप सबकी इच्छा से आज ही उनके पास दावतनामा भेजा जा रहा है. आशा है वह हमें निराश नहीं करेंगे."

● स्वतंत्रता स्मारक

उसी दिन शाम को औकाफ मंत्री का पत्रकारों के साथ प्रेस सम्मेलन था. वास्तव में हम सब औकाफ (धार्मिक) मंत्रालय के अतिथि थे. मंत्री ने आते ही बताया, "विशेष कारणवश हम प्रेस-सम्मेलन स्थगित करते हैं. मगर सारे पत्रकारों के लिए जो इच्छा रखते हों, बसें तैयार हैं. मिसान सेक्टर की ओर ईरानी हमले में बहुत लोग शहीद हुए हैं. युद्धक्षेत्र देखने का बेहतरीन अवसर है, कपड़े व सामान लेने की आवश्यकता नहीं है. केवल कैमरा और टेप ले लें, फिल्म रोल की आवश्यकता पड़ी तो उनका इंतजाम होगा."

टर्की, फ्रेंच, यूगोस्लाविया, बंगलादेश, भारतीय, चीनी, इंडोनेशियाई, सूडानी के सारे पत्रकार यह सुनकर ऐसी चुस्ती से उठे जैसे फौजी सिपाही! बस से हम हवाई अड्डे तक गये, वहां से हम फिर हैलिकॉप्टर से मिसान सेक्टर की ओर उड़े. समय कम था, रास्ता दूर था, हेलिकॉप्टर तूफानी वेग से उड़ रहा था. पायलट के समीप बैठी मैं पूरे बगदाद के हुस्न को देख रही थी. पायलट बहुत प्रसन्न थे और यादों में खो गये. . . जब वह एक भारतीय सरदारजी से उड़ान का प्रशिक्षण ले रहे थे!

हेलिकॉप्टर अब बगदाद शहर से बाहर की ओर उड़ान भर रहा था, कानों में सनसनाहट और हलक के ऊपर नसों का शदीद खिचाव महसूस हो रहा था. पर्स से टॉफी निकालकर मुंह में डाली ताकि मांसपेशियों का तनाव कुछ कम हो. तभी पीछे से इराकी रेडियो के संवाददाता अखबारी साहब ने पूछा,"आप डर तो नहीं रही हैं, नीचे मीलों दलदल है?" उनकी इस बात से नजरें एक-दूसरे अंदाज से पैरों के नीचे फैले दलदल पर डालती हुई बोली, "कहीं आप तो खौफजदा नहीं हैं?" उनका फौरन जवाब मिला, "बेगुनाह मरने से डर लगता है कि मुफ्त जान से हाथ धो बैठें!"

मिसान सेक्टर बगदाद से काफी दूर था, मगर हम 45 मिनट में पहुंच गये थे. वहां पर कमांडर के साथ प्रेस कान्फ्रेंस तय थी. इराकी टेलीविजनवाले हमारे साथ थे. एकाएक कुछ मीलों की दूरी पर गोले बरसने लगे. कमांडर प्रेस-सम्मेलन के बाद हेलिकॉप्टर से ड्यूटी पर निकल गये. हम सामने उड़ती चिंगारियां और लाल होते आसमान को देख रहे थे. सुबह सेमिनार का अंतिम दिन था. जो केवल सेमिनार की रिपोर्टिंग करने आये थे वे पत्रकार व्याकुल थे. हमारे हेलिकॉप्टर हमें छोड़कर वापस बगदाद जा चुके थे. रात के आठ बज रहे थे. गोलों का शोर बढ़ रहा था. अजीब-सी बात थी कि इस एक हमले में 1400 ईरानी एक साथ लाशों में बदल गये. 'इंसानी लहर' जो ईरान से तूफानी वेग से इराक की ओर बढ़ती है उसे रोकने के लिए इराक के पास वायुसेना है. मगर हर बात की सीमा होती है!

रात के दस बजे आधे पत्रकार बसों में बैठे और बगदाद की तरफ चल पड़े. कुछ पत्रकार वहीं युद्धक्षेत्र में रुक गये कि नये आक्रमण की फिल्म लेकर सुबह लौटेंगे. उनके लिए बैरक में बैठे सिपाही कद्दू काटने लगे थे. सारी रात चलकर हम सुबह सात बजे बगदाद पहुंचे. शाम को सेमिनार की विशेष बैठक केवल मौलवियों के लिए थी. दूसरे दिन हमें नज्फ और कर्बला की तरफ जाना था. उसी नज्फ की ओर जिसका सपना खुमैनी साहब देख रहे हैं.

शाम खाली थी, इसलिए शहर को देखने की इच्छा न रोक पायी. शाम ढल रही है, नीली काशीकारी की मस्जिदों की हसीन मीनारें चिराग सिर पर उठाये धुंधले पड़ते आसमान के बीच चमक रही हैं. आजान की गूंजती प्रतिध्वनियों में शहर का कोलाहल डूबता नजर आ रहा है. काम से लौटते, चीनी, जापानी, भारतीय मजदूरों के झुंड सड़क पार करने की बेकरारी में खड़े हैं.

सड़क पर पानी छिड़कती मशीन जा रही है. भिश्ती मशक कमर पर लादे प्यासे राहगीरों को शरबत पिला रहा है. सड़क के किनारे बने पुराने चायखानों की खाली बेंचें, चारखाने का रूमाल सिर पर बांधे और बेचैन उंगलियों से तस्बीह फिराते अधेड़ बूढ़े इराकियों से भर रही हैं. कुछ ने गप्पें मारना और चाय पीना आरंभ कर दिया. कुछ चौपड़ बिछाकर कौड़ी खेलने में व्यस्त हो गये हैं.

शाम का धुंधलका और रोशनी का फैलाव बगदाद को नया रंग दे रहा है. दजला नदी इस नाजो अदा से बगदाद के सीने पर लहराती है जैसे शहर से रोमांस लड़ा रही हो या फिर संदल के दरख्त के तने से लिपटा सांप लैंप-पोस्टों और इमारतों की जगमगाहट का अक्स दजला के पानी पर दीयों की कतारों की शक्ल में उभर रहा है. भाषा न जानने से अजनबीपन का अहसास बढ़ रहा है. कुदरत चाहे जितनी ही हसीन क्यों न हो, यदि वहां के लोगों के अहसास और खयालात का लम्हा न कर पाऊं तो लगता है बस एक बेजान मगर हसीन कैलेंडर देख रही हूं. . . और सचमुच इन हसीन कैलेंडरों के बीच मैं खामोश तमाशाई बनी हुई हूं.

"इतनी उदास, खामोश और तन्हा क्यों हो?"

"नहीं तो?. . ."

"झूठ! चलो उदास, खामोश और तन्हा न सही मगर सोच में डूबी हुई हो न?"

"आप. . .?"

"इतनी देर से मुझे घूर रही हो. पहचाना नहीं? मैं मरजीना, अलीबाबा की कनीज?"

"ओह, मरजीना!"

"हां, मेरी बात का जवाब तो दो!"

"क्या कहूं, भाषा न जाननेवाला गूंगा होता है. अहसास की भाषा को न अक्षरों की जरूरत पड़ती है न ध्वनि की. इसलिए इन नजारों के उसी धरातल पर जी रही हूं."

"समझी! समय की गति को पकड़ने का प्रयास कर रही हो?"

"शायद हां! किसी अजनबी देश की शाम किसी मुसाफिर के लिए कितनी विचारोत्तेजक और भाव-मिश्रित होती है, विशेषकर ऐतिहासिक जमीन की जो बहुत खामोशी से भूत की प्रतिध्वनियों और वर्तमान के पदचिह्नों का समन्वय पैनोरमा की तरह पेश करती है."

"तुमने बगदाद देखा? घूमना. . . चाहोगी?"

"क्यों नहीं, मैं मरजीना से लेकर अब तक के इराक को जीना चाहती हूं."

"कल क्या प्रोग्राम है?"

'नज्फ, कर्बला, जानती तो हो न मैं ईरान-इराक युद्ध-विराम पर आयोजित सेमिनार में आयी हूं."

"उफ! बसरा शहर, कितनी बार उजड़ा कितनी बार बसा है! गोले बरसते रहे, लोग झुलसते रहे. श्स्तुलअरब के सीने पर सारे जहाज साकित खड़े हैं. वाह रे जंग! हां सुनो, तुम सिंदबाद से मिली हो? आजकल बसरा से बगदाद आये हुए हैं."

"सिंदबाद. . .?"

"हां सिंदबाद, बगदाद का प्रसिद्ध बड़ा ताजिर. शायद अभी सादून रोड पर किसी फैशन-शॉप पर खड़ा होगा या फिर सिंदबाद होटल में बैठा टर्की काफी पी रहा होगा."

"उधर ही जाती हूं. मुलाकात हो गयी तो खुशी होगी."

बगदाद शहर पूरे मध्यपूर्व में अपनी हसीन रातों के लिए प्रसिद्ध है. एक तरफ मस्जिदों में आजान हो रही है तो दूसरी तरफ बड़े-बड़े होटलों में फ्लोर-शो हो रहा है. कहीं पर चित्र प्रदर्शनी लगी है तो कहीं पर फैशन-शो हो रहा है. हर व्यक्ति पसंद की जिंदगी चुन सकता है. मगर यह स्वतंत्रता बेलगाम नहीं है, उसकी भी सीमा है. जो इराकी समाज को उसकी सभ्यता, संस्कृति व आधुनिक युग की ठोस धरती पर खड़ा रखे हुए है.

हमारा लंबा-चौड़ा काफिला बस और कारों के जरिये कर्बला पहुंचा! छोटा-सा शहर मगर शियों का पवित्र-स्थल. इस शहर में इमाम हुसैन व उनके अलमबरदार और 72 शहीदों की कब्रें हैं जो बेगुनाह शहीद हुए थे. (ईसा पूर्व 680) कर्बला की खूनी घटना का महत्व ईरान-इराक युद्ध को समझने के लिए महत्वपूर्ण है, दूसरे यदि हजरत इमाम हुसैन हक के लिए शहीद न होते तो इस्लाम आज तक (1400 वर्ष) जिंदा न रहता.

संक्षेप में, खलीफा उस्मान, चौथे खलीफा (ईसा पूर्व 656) की हत्या को लेकर मनमुटाव और गृहयुद्ध की स्थिति आ गयी. छह वर्षों में स्थिति यहां तक पहुंच गयी कि खलीफा उमायाद मोआविया जिनकी राजधानी उमसकम थी, उन्होंने कूफे में हजरत अली को शहीद करा दिया ताकि वह हजरत अली की राजधानी 'कूफा' पर कब्जा करके इस्लाम की सत्ता पूरे रूप से अपने हाथ में ले ले. मोआविया की मृत्यु (ईसा पूर्व 680 में) हुई. उनके लड़के यजीद उमसकस के खलीफा बने. मदीना के लोगों ने इमाम हुसैन को खलीफा बनाना चाहा जो अपने दादा मोहम्मद और पिता अली की तरह पवित्र थे.

मदीना से हुसैन 'कूफा' आये ताकि पिता की 'खिलाफत' को ले सकें. हुसैन अपने परिवार और 72 लोगों के साथ निकले. यजीद ने उबैदउल्लाह नाम के गवर्नर को कूफा की तरफ रवाना किया ताकि वह हुसैन को घेर सके. हुसैन ने देखा कि वह पूर्णरूप से कूफा के निवासियों से अलग रह गये हैं, साथ ही पानी की धारा को भी काट दिया है और इस

इस अंक के आवरण की इराकी चित्रकार बतूल अलफेककई से नासिरा शर्मा की अंतरंग बातचीत

भारतवर्ष मेरे सपनों का देश !

भारी आवाज, उस पर बात-बात पर बेतहाशा हंसना, गर्दन में पड़े बेशुमार अजीबो-गरीब नमूनों के हार, हाथों और उंगलियों में तरह-तरह के कड़े और अंगूठियां. व्यक्तित्व ऐसा कि हर अंग को देखना और समझना पड़ता है, क्योंकि आत्मा से लेकर लिबास और जेवरात तक सब कुछ कला का नमूना लगता है. इराक की इस प्रख्यात चित्रकार से मेरी पहली मुलाकात उनके बनाये चित्रों द्वारा 'फैशन सेंटर' में हुई थी. सुमेरियन शहजादियों के उद्यान-भ्रमण-सी हालत थी.

चालीस साल की बतूल से दूसरी मुलाकात भी चित्र प्रदर्शनी में ही हुई और तीसरी वोमेन फेडरेशन में, जहां पर उनसे लंबी बातचीत भी चली.

वर्तमान इराकी चित्रकारों की स्थिति बताते हुए उन्होंने कहा, "1966 की क्रांति से पहले चित्रकार क्या स्वयं इराक की ही दशा कौन-सी अच्छी थी. उस स्थिति में प्रतिमाएं खिलने से पहले मुरझा जाती थीं. आज के संदर्भ में कहा जा सकता है कि प्रोत्साहन और सुविधाओं ने न केवल चित्रकारों व कलाकारों को भविष्य की चिंता से मुक्त कर दिया है बल्कि उनकी छुपी प्रतिभा को परखने और फलने-फूलने के लिए जमीन भी दी है."

मेरे पूछने पर कि वह किस स्कूल ऑफ आर्ट से प्रभावित हैं? आदत के मुताबिक पहले हंसी, फिर बोली, "बगदादियन स्कूल (अब्बासी काल का अलवसीती स्कूल) से प्रभावित हूं. इस चित्र की शैली में सजावट प्रधान होती है. रंगों की जबान से बहुत कुछ व्यक्त करना पड़ता है."

"बड़ी दिलचस्प बात है कि आप बगदादियन आर्ट से प्रभावित हैं क्योंकि इस्लाम का आरंभ इसी काल से होता है और यही काल इराकी साहित्य, कला का बेहतरीन काल रहा है. फिर इस्लाम में ललित-कला की निंदा क्यों. . .?"

"वास्तव में इस्लाम आत्मा का धर्म है, वह विचार और भावनाओं का आदर करता है, उसकी व्यापकता पर विचार करता है, उसे प्रोत्साहन देता है मगर भौतिक चीजों को नकारता है. इसी लिए वह 'इंसानी-बदन' के चित्रों व चेहरों को बनाने की मनाही करता है. फिर एक बात हमें नहीं भूलनी चाहिए कि इस्लाम एक सियासी धर्म है. जब अरब में इस्लाम आया उस समय वहां मूर्ति पूजा होती थी. एक नये दर्शन को समझाने के लिए, आम दिमागों तक पहुंचाने के लिए उस समय की सरल अभिव्यक्ति यही थी."

उनके उत्तर की स्पष्टता बहुत भली लगी!

"आप किन विदेशी चित्रकारों से प्रभावित हुई हैं? या आपका आर्ट किसी विदेशी स्कूल ऑफ आर्ट से प्रभावित हुआ है?"

"कभी नहीं. चित्रकार जब विदेश यात्रा पर जाता है तो उसकी कला प्रभावित नहीं होती, बल्कि दूसरों की कला उसकी दृष्टि और कल्पना में व्यापकता देती है. मेरा विश्वास है कि अच्छा कलाकार कभी भी किसी अन्य कलाकार की कृतियों का अनुसरण नहीं करता, मगर उससे सीखता है. इराकी चित्रकला पर अरबी व्यक्तित्व की छाप है. वैसे विदेशी स्वयं विदेशों में जाकर प्रभावित हुए हैं. जैसे सीजान—फ्रांस, पिकासो—इटली, इनकी आरंभ की कला पहले इस्लाम और फिर अफ्रिकन आर्ट से प्रभावित हुई है. दलाकगुला मोरक्को की चित्रकला से प्रभावित है.

"भारतवर्ष के बारे में आपके विचार?"

"वाह!" कहकर उन्होंने दोनों हाथ सीने पर बांधे और खिलखिलाकर बोली, "भारतवर्ष मेरे सपनों का देश है. मेरी बहुत पुरानी इच्छा है उस अद्भुत धरती को जीने की! जीवन में जब भी अवसर मिला उसे देखने जरूर जाऊंगी!" □

हालत में उबैदउल्लाह बलपूर्वक उनसे आत्मसमर्पण करवाना चाह रहा है. हुसैन के साथियों ने खंदक खोदकर उसमें आग रौशन की ताकि दुश्मन उन तक पहुंच न पाये, मगर उबैदउल्लाह के फेंके तीरों ने एक के बाद एक सबकी जान ले ली. आखिर में मरनेवाले हजरत इमाम हुसैन थे. लाशें वहीं कूफा के रेगिस्तान में बालू के नीचे दब गयीं. इस्लाम या शियों में शहादत का दर्शन इसी घटना से आरंभ होता है.

नज्फ में हजरत अली की आरामगाह है और कर्बला में इमाम हुसैन की. इमाम हुसैन की कब्र से कुछ दूर पर हजरत अब्बास की कब्र है जो हुसैन के चचाजाद भाई थे और यजीद द्वारा बंद किये गये पानी के बावजूद वह पानी लेने पहुंचे थे तो एक के बाद एक उनका हाथ काट डाला गया तो पानी से भरी मश्क दांतों से निकलकर प्यासी धरती पर गिर गयी. . . और वह वहीं शहीद हो गये! हुसैन का छह मास का बच्चा हजरत अगसर प्यासा ही दम तोड़ गया!

हजरत मोहम्मद के जीवन, व्यवहार, आचरण को 'सुन्नत' कहते हैं. उस सुन्नत को माननेवाले 'सुन्नी' कहलाते हैं. इस्लाम आने के बाद सारे मुसलमान सुन्नी थे. 300 वर्ष तक अरबों ने ईरान पर हुकूमत की. है. ईरान की धार्मिक, सरकारी, दरबारी भाषा अरबी हो गयी थी. मगर ऐसे लोग भी थे जो अरब सत्ता व इस्लाम को नकारते थे. वे ईरान से भागकर भारतवर्ष आये और गुजरात में बसे और 'पारसी' कहलाये. यह 'जरदुश्ती' थे जो ईरान में आग की पूजा करते थे. अरब व अरबी भाषा से घबराये फिरदौसी थे जिन्होंने बड़े दुख के क्षणों में ईरान की तारीख को 'शाहनामे' की शकल (60,000 शेर) में कहना शुरू किया ताकि खालिस फारसी की एक सनद आनेवाली नस्लों के लिए बच सके.

ईरानी में सफव्वी काल में शिया सेक्ट (शाख) का

आरंभ हुआ. यह भी सियासी जरूरत थी, अरबों के बीच ईरानी व्यक्तित्व को जिंदा रखने के लिए. शिया, अली और सैन के शदीद अनुयायी हैं. अब खुमैनी यह दावा करते हैं कि नज्फ और कर्बला शियों का पवित्र-स्थान शियों को मिलना चाहिए. बगदाद पर 1587, 1604 और 1605 में ईरानियों का आक्रमण हुआ था. 1638 में सुलतान मुराद 'मुहादाम दरवाजे' से बगदाद में दाखिल हुआ और बगदाद की सारी मस्जिदों और इमामबाड़ों को उसने फिर से सजाया और मरम्मत करवायी. इस बात की ओर इशारा करते हुए खुमैनी का दावा है कि इराक का प्रत्येक धार्मिक-स्थल इरानियों ने बनवाया है, यहां तक कि रेजाशाह पहलवी द्वारा दिये गये सोने के दरवाजे बीसवीं सदी में भेंट किये गये हैं. इस दावे के साथ खुमैनी युद्धबंदी के पक्ष में नहीं हैं.

जब हम नज्फ पहुंचे तो हमारे स्वागत में स्कूली बच्चे फौजी लिबास में हाथों में सद्दाम हुसैन की तस्वीर लिये अरबी में नारे लगा रहे थे. वे सब हमें बताना चाह रहे थे कि 'हमारे प्रिय नेता सद्दाम हैं. खुमैनी लाख कहे मगर हम सद्दाम हुसैन को चाहते हैं.'

हिंदुस्तान के शिया आज भी नज्फ कर्बला के कफन को महत्व देते हैं. नज्फ जाकर मेरे मन में भी विचार आया कि आयी हूं तो एक-दो कफन तोहफे के तौर पर बुजर्गों के लिए ले लूं. अभी मैं सोच ही रही थी कि कड़ी धूप में लाश को उठाये चार अरब हजरत अली की दरगाह में दाखिल हुए और उनकी कब्र के कई चक्कर लगाकर कब्रिस्तान की तरफ चले गये. लाश पर इराकी झंडा पड़ा देखकर पता चल गया कि फौजी अफसर होगा. आधे घंटे में इस तरह से दस लाशें आयीं और गयीं, मगर दरगाह का अनुशासन भंग नहीं हुआ. संसार भर से आये हुए लोग नमाज और इबादत में व्यस्त रहे.

ईरान में एक शहीद का जनाजा पूरे शहर में घुमाकर ही कब्रिस्तान ले जाया जाता है. रोना, चीखना, पूरे सामाजिक स्तर पर होता है फिर शहीद की तस्वीरों का पोस्टर पूरे शहर में चिपकाया जाता है. दोनों समाजों को देखकर लगता है कि ईरान का मुख्य उद्देश्य युद्ध करना है वरना उसका तख्ता पलट जायेगा. इसलिए इस्लामी रंग में रंगी शहादत, आंसू और कब्रिस्तान उनकी धुरी हैं, वहां पर कारखाने, मिलें उत्पादन के स्थान पर बंद पड़े हैं. स्कूल-कालेजों में फौजी ट्रेनिंग दी जाती है. विश्वविद्यालय बंद है. प्रगति का कोई चिन्ह किसी भी क्षेत्र में नहीं है. यहां तक कि खूजिस्तान की रिफाइनरी बंद पड़ी है. नौरग्ज नामक पेट्रोल का कुंआ बह रहा है. कुवैत के पास पीने का पानी नहीं है. तेल पूरी फारस की खाड़ी में फैल रहा है, मगर खुमैनी को चिंता नहीं है. इराक में सब कुछ चल रहा है. समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपना कर्तव्य निभा रहा है. फौज युद्ध क्षेत्र में अपना कर्तव्य निभा रही है. नयी इमारतों से बगदाद भर गया है. चीनी, जापानी, भारतीय तख्ती झंडों पर झूलती हुई दूर से नजर आती है. नये फ्लाईओवर और पुल, होटल, इमारतें वास्तव में देखनेवाले को आश्चर्य में डाल देते हैं कि युद्ध के साथ यह प्रगति? हां, युद्ध के कारण इराक में चार गुनी मंहगाई जरूर बढ़ी है. दूसरे लोग इस युद्ध से थक रहे हैं. आबादी कम होने के कारण जवान कम नजर आते हैं. दूकानों पर अधिकतर बूढ़े और दफ्तरों, मंत्रालयों व अन्य स्थानों पर सिर्फ औरतें नजर आती हैं. शहीद के परिवार को सरकार एक मरसीडीज कार देती है. लड़कियों की अधिकता के कारण उनका झुकाव विदेशियों की ओर हो सकता है, इस आशंका से एक नया कानून बना है कि विवाह के बाद विदेशी पति चंद माह युद्ध क्षेत्र में जायेगा. इससे पहले यह कानून था कि यदि किसी ने किसी विदेशी से विवाह किया तो उसे इराकी नागरिकता लेनी पड़ेगी.

ईरान में सद्दाम हुसैन का दावतनामा पहुंच गया. ईरानी रेडियो ने ऐलान किया—'इस दावतनामे का जवाब बहुत जल्द मिल जायेगा?' मौलवियों के एक विशेष वर्ग को बहुत प्रसन्नता हुई. उसी दिन मेरी मुलाकात सूचना मंत्री से हुई. अभी मैंने प्रश्न पूछना शुरू ही नहीं किया था कि फोन की घंटी बजी और उनकी घबराई आवाज उभरी "कब. . . ?कब. . . आया?" कुछ समझ में नहीं आया कि हुआ क्या! बस, सूचना मंत्री क्षमा याचना करते हुए भागे और मैं होटल लौटने के लिए. पुराने सारे रास्ते बंद हो गये थे. कार काफी पेचदार गलियों और पुलों से गुजरती होटल पहुंची. वहां पर फ्रांसीसी पत्रकार घबराये खड़े थे. पूछने पर पता चला कि होटल के पास टी.वी. सेंटर में बम फटा है जिससे सारे होटल के शीशे चूर हो गये हैं. समझते देर न लगी कि यही जवाब खुमैनी को 'दावा पार्टी' (यह पार्टी मुसासदर ने इराक में आरंभ की थी. यह खुमैनी के उपन्सक हैं. मूसासदर खुमैनी के बहनोई थे जिन्हें गद्दाफी ने मरवाया था) से दिलवाना था.

कमरे में पहुंची और सिर पकड़कर बैठ गयी. बिस्तर, सोफे, कपड़ों, किताबों, फर्श पर सिर्फ शीशे थे और मेरे बिस्तर पर बालकनी का आदमकद दरवाजा उखड़ा पड़ा था. कमरे को साफ करनेवाली लड़की 'लैला' आ गयी और लगभग रुआंसी होकर बोली, "पिछले छह माह से हमारा यही काम रह गया है, शीशों की किरची को समेटना क्या आसान काम है?"

शाम तक हम सब पत्रकार अन्य होटल में शिफ्ट कर दिये गये. □

(अगले अंक में समापन किस्त)

—अगले अंक में—

युद्ध का चाव वस्तुतः ईरान को चर्राया हुआ है या इराक को?. . .मरजीना के रूप में इराक की नारी आज किस दौर से गुजर रही है और व्यापारी के रूप में सिंदबाद आज कौन-सी भूमिका निभा रहा है?—पढ़िए, इस रिपोर्ताज की समापन किस्त

मोसुल में खेले गये हैदर महमूद के नाटक का नायक अल-जलीली अपने लोगों से हमलावरों को खदेड़ने का आह्वान कर रहा है.

साहित्य के जरिये खुलनेवाली खिड़कियों की तलाश

▣ कन्हैयालाल नंदन

इराक की सरजमीन पर साहित्य से जुड़े सरोकारों के बीच सवाल दर सवाल कि हरदम सिर पर लटकती युद्ध की तलवार के बावजूद वहां के लेखक, संपादक और पत्र-पत्रिकाएं कौन-सी भूमिका निभा रहे हैं! साहित्य और साहित्यकारों के रुझानों में क्या फर्क आये हैं? नये माहौल की नयी कहानियां किन-किन आडंबरों का शिकार हो सकती हैं और इराक तथा भारत के बीच कितना साहित्यिक आदान-प्रदान संभव हो सकता है? . . . आदि मसलों के संदर्भ में 'अलिफ-लैला' के वर्तमान परिवेश को रेखांकित करता विशिष्ट परिचयपूर्ण साक्षात्कार—

मैंने एक बार यूगोस्लोवाकिया की एक महिला लेखिका गोजदाना से दिल्ली में पूछा था—'क्या कारण है कि दूसरे विश्वयुद्ध के इतने साल बाद भी पश्चिम का कथाकार युद्ध की प्रतिच्छाया से अपना पीछा नहीं छुड़ा सका?' उसने बहुत खूबसूरत जवाब दिया था—'जिन भयावह स्थितियों को पश्चिम के कथाकार ने अपनी आंखों देखा है और उसका परिणाम कहीं न कहीं भोगने को मजबूर हुआ है, उससे पीछा छुड़ा पाना मुश्किल होता है.' इराक पहुंचकर मेरी यह जानने की इच्छा फिर बलवती हो उठी कि जिस ईरान-इराक युद्ध को पिछले चार साल से इराक का लेखक न केवल अपनी आंखों देख रहा है, बल्कि उसके परिणाम सीधे-सीधे दैनंदिन जीवन में भुगत रहा है, उसकी रचना प्रक्रिया पर इसका क्या असर पड़ रहा है. कुछ ऐसे ही कारण थे जो मुझे बगदाद की एक साहित्यिक पत्रिका 'आफाक अराबिया' के दफ्तर ले गये. किसी पत्रिका के दफ्तर में इतनी शान-शौकत देखकर मैं भ्रम में पड़ गया कि कहीं गलत जगह तो नहीं आ गया. आप विश्वास नहीं करेंगे, पूरे दफ्तर में उसका फर्नीचर, दीवारें दूसरे साज-समान कुछ इतने खूबसूरत ढंग से सजे हुए थे कि उन कुर्सियों पर बैठने में डर लगता था कि कहीं इन बेचारियों की सेहत न खराब हो जाये! जिन लोगों को विश्व की फर्नीचर-शैलियों का पता है उन्हें मालूम है कि सीरियाई मुनब्बतकारी कितनी कीमती होती है. उस पत्रिका के दफ्तर में पूरा का पूरा फर्नीचर सीरियाई मुनब्बतकारी का बेहतरीन नमूना था. संपादक डा. मोहसिन जे. अली मूसवी के कमरे में पहुंचते ही मैंने सबसे पहले उन्हें इस खूबसूरत फर्नीचर और साजो-सामान की मुबारकबाद दी. उन्होंने उस मुबारकबाद को अपनी बगल में रखी हुई कुर्सी की तरह एक तरफ खिसका दिया और मेरी आवभगत में लग गये. फिर बोले, "यहां साहित्यकारों में टैगोर बड़े लोकप्रिय थे. इसके बाद की पीढ़ियों का भारतीय साहित्य अरब देशों में मुनासिब मात्रा में नहीं पहुंच पा रहा है." मैंने पूछा, "प्रेमचंद, प्रसाद, जैनेंद्र अज्ञेय. . .?" वे बोले, "प्रेमचंद को यहां नहीं पढ़ा जा रहा है. असल में हम लोग चाहते हैं कि आधुनिक साहित्य भी पढ़ा जाये, लेकिन अनुवादों का चैनल नहीं खुल पा रहा है. मैंने तो यहां इस बारे में यूनियन ऑफ राइटर्स में भी बात उठायी है."

मुझे इस बात में हैरत हो रही थी कि जब इस देश में भारतीय साहित्य के नाम पर टैगोर से आगे कुछ पढ़ा ही नहीं गया या नहीं जा रहा है, तब फिर साहित्य के जरिये एक-दूसरे को समझने का क्रम शुरू कैसा होगा. वे मेरी इस चिंता से सहमति प्रकट करते हुए बोले, "हमारी दिक्कत यह है कि तमाम भारतीय भाषाओं से सीधे अरबी में अनुवाद का क्रम खोलना बड़ा श्रमसाध्य है. हमारे पास इतनी भारतीय भाषाएं जाननेवाले लोग नहीं हैं." और फिर धीरे-धीरे बात का सिलसिला नये लेखन पर आ गया. वहां का नया लेखक बगदाद के बदलते हुए स्वरूप का चित्रण करता हुआ आपको मिलेगा. पिछले एक-दो सालों में बगदाद की सड़कें, बगदाद की ऊंची-ऊंची बिल्डिंगें, बदलती हुई क्षितिज रेखा, आधुनिकता से परंपरा की टकराहट, पश्चिम के सांस्कृतिक प्रभाव आदि के प्रति नया लेखक सोचता है और उन्हें अपनी कहानियों और कविताओं में ढाल भी रहा है. यह भी पता चला कि इराकी कहानियों में स्थानीय मसले बहुत उभरकर आ रहे हैं. वहां के हुक्मरान का ऐसा सोचना है कि इराक की अच्छी शिक्षा इस देश को समझने-समझाने में समर्थ होनी चाहिए. उसका फायदा देश को मिलना चाहिए.

मैंने जैसा पहले कहा, मेरी जिज्ञासा युद्ध के संदर्भ में लेखन को जोड़कर देखने की भी थी. इराकी साहित्य के समीक्षक आज के लेखन में युद्ध की प्रतिच्छायाओं का बारीकी से अध्ययन कर रहे हैं. एक फिलिस्तीनी लेखक हैं मि. जबरान. वे युद्ध संबंधी इराकी लेखन पर डा. मोहसिन के साथ काम कर रहे हैं और अगर मोटे तौर पर भी देखें तो अब तक लगभग साठ-सत्तर उपन्यास और सात-आठ कहानी संग्रह सिर्फ युद्ध की थीम को लेकर प्रकाश में आ चुके हैं. डा. मोहसिन स्वयं अंग्रेजी में इराकी साहित्य के एक समर्थ समीक्षक माने जाते हैं. मैंने पूछा:—

क्या इस प्रकार के लेखन को आप किसी विशेष संज्ञा से भी अभिहित करना पसंद करते हैं जैसे कि अंग्रेजी में 'वार राइटिंग' से एक खास लेखन-दृष्टि का परिचय मिलता है?

—जी हां, पिछले कुछ बरसों में इस तरह का लेखन इराक में पनपा है जिसे हम इस संज्ञा से अभिहित कर सकते हैं. इतना ही नहीं, ऐसे लेखक भी हैं जो स्वयं युद्ध में रहे हैं या अभी भी सेना में काम कर रहे हैं. मैं स्वयं अंग्रेजी का आदमी हूं, इसलिए यह गर्व से कह सकता हूं कि अगर अंग्रेजी में हैमिंग्वे थे तो यहां पर भी इस दिशा में महत्वपूर्ण काम हो रहा है.

अभी आपने कहा कि आपके कुछ लेखक सेना में भी काम कर रहे हैं. सामान्य सिपाही की तुलना में एक लेखक-मन सिपाही की चेतना भिन्न होती है. . .

—मैं आपकी बात समझ रहा हूं कि आप किस बात की ओर संकेत करना चाहते हैं. लेखकों का युद्ध में जाना एक दूसरी तरह की संवेदना से उन्हें जोड़ता है. लेकिन यह भी सही है कि ऐसे ही लोग सैनिक जीवन का सही खाका उसकी पूरी अंतश्चेतना के साथ चित्रित भी कर सकते हैं. बल्कि मैं तो यह कहूंगा कि अब युद्ध के लिए लेखकों को बाहर से कल्पना करने की जरूरत नहीं रह गयी. अब उस वातावरण को वे स्वयं देख और भोग रहे हैं. यथार्थ के धरातल पर उन्हें वह वातावरण उपलब्ध है. अब उन्हें सीधे युद्धभूमि में ही लिखने के लिए नये-नये प्लाट मिल रहे हैं. इतना ही नहीं उनकी शैली तक बदल रही है. अब उन्हें बात को कहने के लिए आडंबरपूर्ण शब्दावली और शैली की जरूरत नहीं है. सीधे-सीधे बात कहने का अंदाज पनप रहा है. . .और ऐसा 1980 के बाद से विशेष रूप में से हो रहा है.

क्या यहां की अरबी पत्र-पत्रिकाएं इस तरह के लेखन को प्रकाशित करने में दिलचस्पी लेती हैं और नयों को प्रोत्साहन देने में जो भूमिका उन्हें अदा करनी चाहिए, वह करती हैं?

—बेशक. अरबी का महत्वपूर्ण डेली पत्र है 'अलतौरा' जिसके संपादक नये लोगों को काफी आगे बढ़ा रहे हैं.

क्षमा करें, मेरी जिज्ञासा यह जानने की भी हो रही है कि युद्ध को लेकर लिखी गयी कहानियों में कहीं सिर्फ युद्ध के खिलाफ मानवता की मात्र डुगडुगी पीटने का स्वर तो नहीं है? कई बार ऐसा साहित्य प्रचार-साहित्य से आगे नहीं बढ़ पाता.

—देखिए, यह उम्मीद करना बेकार है कि कोई कहानी मानवता के खिलाफ युद्ध की महत्ता और गरिमा की स्थापना करने के लिए लिखी गयी होगी. यह तो गैरइंसानी लेखन होगा लेकिन मैं एक कहानी का जिक्र करना चाहूंगा. मेरे एक साथी की कहानी है 'पिस्तौलों की दीवार' (वाल आफ पिस्टल्स). कथानायक के पिता को पिस्तौलें जमा करने का शौक है. . . और नायक है कि वह अपने पिता के इस शौक से घृणा करता है. वह अपने गांव जाता है तो उसी समय उस गांव पर दुश्मन का हमला हो रहा होता है. उस हमले को देखकर उसे अपने पिता की जमा की हुई पिस्तौलों की याद आती है. . . वही पिस्तौलें जिन्हें वह बेहद घृणा करता था. कहानी यहीं खत्म होती है, लेकिन युद्ध के प्रभाव और उसकी चपेट में आदमी की बदलती हुई मानसिकता का एक खाका हमारे सामने जरूर रखती है. यह ईरान-इराक युद्ध के शुरू-शुरू के दिनों में लिखी हुई कहानी है. तब से तो एक से एक खूबसूरत कहानियां लिखी गयी और छपी हैं.

एक समीक्षक के नाते आप इस तरह के युद्ध संबंधी लेखन में और कौन-कौन से महत्वपूर्ण तथ्य पाते रहे हैं?

—असल में युद्ध का यथार्थ-चित्रण ही इन कहानियों का असली मकसद नहीं होता. युद्ध क्या होता है और उसके कुप्रभाव किसी देश को कहां पहुंचा देते हैं, इसके जरिये तमाम लेखकों ने इराक को राष्ट्रीयता का संदेश दिया है. यह 'हुब्बुलवतनी' किसी उन्माद से पैदा राष्ट्रप्रेम नहीं है, बल्कि सार्वभौम धरातल पर मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा है जिसमें हुब्बुलवतनी भी एक है. इस तरह के लेखन से अपने कार्य

आधुनिक इराकी उपन्यास के संस्थापक मोहम्मद अल सैयद

के प्रति विशेष आकर्षण और निष्ठा का भाव भी उभरकर आया है. इस पर मैंने काफी कुछ लिखा है और अब वह किताब के रूप में जल्दी ही अरबी और अंग्रेजी में छपनेवाला है.

आप एक बात तो मानेंगे कि कोई संवेदनशील लेखक-मन फौजी अपने दुश्मन की आंख का आंसू देखकर उसे मारने के बजाय हो सकता है युद्ध से ही विमुख हो जाये. किसी सामान्य फौजी के लिए यह बात संभव नहीं कही जा सकती. इस तरह मोर्चे पर संवेदनशील होकर युद्ध-विमुख होना अपने को और अपने देश को खतरे में डाल सकता है.

—जी हां, आप बहुत सही फरमा रहे हैं. ऐसी स्थितियां युवा लेखकों की अनेक कहानियों में आपको यहां देखने को मिल सकती हैं. मैं तो ऐसी कहानियों को युद्ध के प्रति अरुचि पैदा करने-वाली महत्वपूर्ण कहानियां मानता हूं. युद्धबंदियों की भावनाओं को लेकर लिखी गयी कहानियां भी इसी तरह की हैं. जिन युद्धबंदी शिविरों में कुछ ईरानी कवि-मन फौजी बंदी है, उनकी कविताएं कुछ इसी मनःस्थिति की कविताएं हैं. एक बात और हुई है कि इस युद्ध ने हमारे यहां की पत्रकारिता को एक नयी शैली दी है. . .और पत्र-कारिता से जुड़े हुए संवेदनशील लेखक काफी आगे आ रहे हैं और लेखन की नयी शैलियों की आजमाइश कर रहे हैं.

कई बार एक स्थिति का उन्माद चाहे वह देश पर हमला होने पर देशभक्ति हो क्यों न हो, लेखन में इतना बड़ा सैलाब पैदा कर देता है कि खास तौर से छुटभैये लेखक ऐसी स्थितियों में लेखन की गलत तस्वीर पेश करने लग जाते हैं. क्या आप भी ऐसा महसूस करते हैं?

—ऐसा सभी जगह होता है. सैलाब में से कूड़े-कचरे को छानने के लिए आपको कहीं न कहीं कोई जाल डालना ही पड़ता है. मैं कूड़े-कचरे को इकट्ठा करने में विश्वास नहीं करता और न

• मोहम्मद अब्दुल मजीद के उपन्यास का मुखपृष्ठ.

यह मानता हूं कि किसी लड़ाई को कूड़ा-लेखन का जरिया बनाया जाना चाहिए. युद्ध का लेखन प्रोपेगंडा भी हो सकता है और परम ऊंचाई तक पहुंचा हुआ कालजयी लेखन भी हो सकता है. हम इस बात के बारे में पूरी तरह सावधान हैं कि हम दुनिया को इराक की वही रचनाएं पढ़ने को दें जो युद्ध की स्थितियों से उपजी हुई कालजयी कृतियां मानी जायें.

युद्ध की इन नयी स्थितियों के टकराव में आपका परंपरागत लेखन कितना हताहत हुआ है?

—'हताहत' शब्द से मुझे एतराज है. परंपरा प्रवाहमान धारा है वह भी नये के साथ समानांतर, हमेशा चलती रहती है. 1950 के आसपास का इराकी-लेखन परंपरा से बहुत समृद्ध था. लेकिन समय के साथ उसका स्वरूप बदला है. फिर भी इतना कहना चाहूंगा कि स्वरूप कुछ भी बदल गया हो हमारे यहां के नये लेखक में भी अपने पीछे की परंपरा का सहारा लेकर चलने का जबर्दस्त माद्दा है.

आपके यहां लेखन में सादगी को कितना महत्व दिया जाता है?

—अंग्रेजी में कहूं 'सिंपल इज मोस्ट इंपोर्टेंट'. . . सादा लेखन सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है.

आपने परंपरा की बात की थी, आप-के यहां 'अलिफ-लैला' की दुनिया है, 'सिंदबाद की यात्राएं' रही हैं. 'लैला-मजनूं' की प्रेम कहानी है—इनसे सारे संसार ने लाभ उठाया है. मैं जानना चाहूंगा कि जब लैला-मजनूं की जोड़ी इसी इराकी धरती की देन है तो उनकी प्रेम परंपरा का यहां के साहित्य पर भी तो कुछ असर पड़ा होगा!

—देखिए, हमारे यहां प्रेम कहानियां लिखी तो गयी हैं, आज भी लिखी जा रही हैं, लेकिन उनकी वैचारिक दृष्टि बदल गयी है. आज का कहानीकार लैला-मजनूं की अपने को उत्सर्ग कर जानेवाली प्रेम-परंपरा को सहानुभूति तो दे सकता है लेकिन मजनूं के पागलपन को पसंद नहीं करता. अतीत को जीना अच्छा हो सकता है, लेकिन पागलपन जीना मुनासिब नहीं होता. एक बात और जान लीजिए कि लैला-मजनूं इराकी जीवन में कोई बहुत इज्जतदार मुहब्बत की जोड़ी नहीं है. 'अरेबियन नाइट्स' पढ़िए तो उसमें और भी तमाम जोड़ियों के नाम मिलते हैं. लेकिन आज के अधिकांश लेखक इन जोड़ियों की प्रेम-शैली का मजाक उड़ाते हैं. अभी हाल में ही संस्कृति विभाग ने मोहम्मद अब्दुल मजीद का एक उपन्यास छापा है, जो है प्रेम-कथा लेकिन युद्ध की स्थितियों पर आधारित है. उसमें प्रेम बहुत है लेकिन पागलपन नहीं है.

आपके यहां आधुनिक इराकी कथा-साहित्य की शुरुआत कब से मानी जाती है?

—उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से जब 1856 में अल-अल्सी ने पुराने 'मकाम' के रूप को फ्रांसीसी साहित्य की देखा-देखी पुनरुज्जीवित करने की कोशिश की थी. 1913 में 'लुगत-अल-अरब' नामक पत्र में 'किस्सा-अल-रुय्या' शीर्षक से कहानियां प्रकाशित हुईं. ये कथा और समीक्षा का मिलाजुला रूप मानी जाती हैं. 1921 में अल सय्यद का 'शादी के लिए' उपन्यास प्रकाशित हुआ जिसमें आधुनिक उपन्यास के विकास के बुनियादी सूत्र मिलते हैं. इससे दो साल पहले सुलेमान फैजी का उपन्यास प्रकाशित हुआ था. आप उसे इराकी उपन्यास की शुरुआत मान सकते हैं. अल सय्यद ने उसमें क्रांतिकारी रंग भरे.

पृष्ठ 69 पर जारी. . .

नपुंसक

• मधुकर सिंह

धारावाही उपन्यासिका : समापन किस्त

पिछले अंकों में आपने पढ़ा :

विश्वविद्यालय और महाविद्यालय में हड़ताल है, सभी लड़के पढ़ाई को लेकर परेशान हैं मगर डॉ. अतुल इन सबसे बेखबर अपने लिए राजनीतिक माहौल बनाने में व्यस्त हैं. वे आगामी चुनाव में खड़े होना चाहते हैं. वे अपने छात्र-छात्राओं का शोषण करने में जरा भी नहीं हिचकिचाते. रोहित जैसे प्रतिभाशाली छात्र से राजनीतिक लाभ उठाते हैं तो दीपा, दामिनी, सुकीर्ति जैसों से शारीरिक. दामिनी बदनामी के डर से आत्महत्या कर लेती है. दीपा भरी सभा में उनका अपमान करती है. सुकीर्ति का पारिवारिक जीवन बिखराव के कगार पर पहुंच गया है. मगर डॉ. अतुल दीपा से बदला लेने और सुकीर्ति से शारीरिक सुख पाने के सपने देखते हैं. आंदोलन जोर पकड़ता है और रोहित, सुकीर्ति, गुप्ता, कांतिमोहन, रामसिंह वगैरह को जेल में बंदकर दिया जाता है डॉ. अतुल विभिन्न पार्टी नेताओं, मंत्रियों से साठ-गांठ बिठाने में व्यस्त हो जाते हैं. उनकी ही तरह और भी प्राध्यापक इस क्षेत्र में पदार्पण करने के लिए कदमताल करने में मशगूल हैं.—

डॉ. अतुल ने अचानक सुबह समाचार पत्रों में पढ़ा कि कल शाम को ही पंद्रह छात्र-नेताओं और राजनीतिज्ञों को छोड़कर बाकी सभी जेल से रिहा कर दिये गये हैं. साथ-साथ यह भी एक सूचना थी कि सरकार उनकी समस्याओं पर सहानुभूतिपूर्वक विचार कर रही है. विश्वविद्यालय और उससे संबद्ध सभी कॉलिज पहली सितंबर से खुल रहे हैं.

उन्होंने कार निकाली और दस मिनट के भीतर प्रो. गुप्ता के फ्लेट के सामने पहुंचते हैं. उन्होंने ऊपर आते ही गुप्ता और सुकीर्ति को जेल से छूटकर आने के लिए बधाई दी. मगर दोनों इतना फीका मुस्कराते हैं कि डॉ. अतुल को अच्छा नहीं लगता.

"जेल में बीमार थे?" वे कहते हैं.

"नहीं तो."

"तब दोनों उदास क्यों हो?"

"उदासी की तो बात ही है, सर." प्रो. गुप्ता खीझते हुए कहते हैं, "हम सभी कायर लोग हैं. हम कुछ नहीं कर सकते. कांतिमोहन ठीक कहते हैं कि जब तक राजनीतिक पार्टियों का नेतृत्व जन-विरोधी और बुर्जुआ नेताओं के हाथ

में रहेगा, हम कायर ही रहेंगे. बाबू वर्ग बगैर अपनी मानसिकता, संस्कार और मायावी चरित्र तोड़े तमाम ट्रेड यूनियनों के नेतृत्व में आ गया है. राजनीतिक स्थितियां तब अराजक होंगी. हमारा शिक्षक-समाज गलत है सर, उफ . ."

"कांतिमोहन भी छूट गया?"

"शिक्षकों में केवल वही रह गये हैं."

"और छात्र?"

"अनवर, रोहित आदि कुल दस रह गये हैं. चार-पांच मामूली हैसियत के राजनीतिक कार्यकर्त्ता भी अभी तक नहीं छोड़े गये हैं. कांतिमोहन के समझाने-बुझाने के बाद ही लोग जेल से बाहर आने के लिए तैयार भी हुए हैं."

सुकीर्ति चाय रखकर गयी है. डॉ. अतुल की इच्छा है कि वह भी सामने बैठती. मगर भीतर से अभी भी उनके सामने झेंप रही है. बल्कि एक तरह से नफरत की मोटी तहें मन के ऊपर जमती गयी हैं. कांतिमोहन और सुकीर्ति को लेकर जो अफवाहें उठी थीं उसकी सुकीर्ति को जेल से ही जानकारी है. वह डॉ. अतुल की साजिश को समझ रही है. ऐसे बिचौलिए बड़े खतरनाक हैं.

"बैठो सुकीर्ति, खड़ी क्यों हो?" वे टोकते हैं.

"एक बात कहूं, सर!"

"कह ना?"

"आप मरते क्यों नहीं हैं?"

डॉ. अतुल चौंकते हैं और डरकर उसकी ओर ताकने लगते हैं. "तू भी नक्सलाइट है, सुकीर्ति?"

वह खिलखिलाकर हंसती है. "आपको भी इस मुहावरे से सुरक्षा और सुविधा मिलने लगी है."

"मुझे तुमसे डर लगने लगा है."

"अगर आप डरते तो अच्छी बात थी. हमारे यहां के

सुकीर्ति उनके सामने खड़ी नहीं रह पाती. गुस्सा समेटकर अंदर चली जाती है.

कुछ भी हो डॉ. अतुल इसे बर्दाश्त नहीं कर सकते. इस औरत से बदला तो लेना ही है. कायर बदला लेने में बड़ा निपुण होता है. डॉ. अतुल मन-ही-मन प्रतिज्ञा करने लगते हैं, 'बदला नहीं लिया तो आदमी नहीं, कुत्ता.'

वहां से डॉ. अतुल सीधे शिक्षा मंत्री के आवास पर पहुंचते हैं. मंत्रीजी को कहीं जाने की जल्दबाजी है. उन्होंने अपने साथ डॉ. अतुल को भी गाड़ी में ले लिया है. रास्ते भर दोनों बतियाते रहे हैं.

"तब सर, चुनाव की तैयारी कर रहे हैं न!" मंत्रीजी पूछते हैं, "इन दिनों सरकार बहुमत में है. विरोधी दलों में कोई दम नहीं है. परंतु पार्टी का विचार है कि चुनाव करा लिया जाय. इन आंदोलनों को नकारने का आसान रास्ता है."

"मैं तो कब से तैयारी किए बैठा हूं. मगर बिना आपकी चौतरफा सहायता के चुनाव जीतना असंभव है."

"मैंने आपको वचन दिया है, सर."

गाड़ी सचिवालय पहुंचती है और दोनों साथ-साथ शिक्षा मंत्री के कार्यालय में जमकर आसन ले लेते हैं.

"अब बतलाइए सर, आपके इस शिष्य को क्या करना होगा?" मंत्रीजी इत्मीनान से पूछते हैं, जैसे इस आसन पर बैठ जाने के बाद आदमी परमानंद लोक में पहुंच जाता है.

"कुछ का सफाया करना होगा."

"आप निश्चित रहें. हम कुछ शिक्षक और छात्रों को चुनाव की घोषणा के बाद भी नहीं छोड़ने जा रहे हैं. शिक्षक और कर्मचारियों को हम हड़ताल-अवधि का वेतन भी नहीं देने जा रहे हैं. इनमें तो कइयों पर गंभीर आरोप हैं."

आमूल नहीं तो बहुत कुछ परिवर्तित हो, इस मुद्दे को लेकर आंदोलन शुरू हुआ था, सभी छात्र इस आंदोलन में जुटे भी इसलिए थे कि उन्हें यथा–स्थिति अब सह्य नहीं थी—मगर अचानक इन छात्रों को क्या हो गया. . . जो साथी जेल में ही रह गये हैं उनके लिए उन्हें बेचैनी क्यों नहीं है. . . मांगें जहां थीं वहीं हैं, सरकार की तरह बाहरी लोग भी बुनियादी परिवर्तन के पक्ष में नहीं हैं. . . अखबार भी चुप हैं. . . और सबसे अधिक चुप्पी साधी है इन छात्रों ने. . . आखिर ऐसा क्यों होता है. . . कौन-से वे हालात हैं जहां तमाम मोर्चाबंदी असली मुद्दे पर से भटक जाती है. . .? शिक्षा-जगत की नीति और राजनीति को बेनकाब करती उपन्यासिका की अंतिम कड़ी—

कायर कहां डर रहे हैं."

डॉ. अतुल को लगता है, सुकीर्ति उन्हें अपमानित करने पर तुली हुई है. मगर वे भी कम हरामी चीज नहीं हैं. उन्हें अपमान सहने की बड़ी विचित्र लत है. वे लगातार मुस्कराते जा रहे हैं. इसी मुस्कराहट ने तो कई कन्याओं का हनन किया है. वे अमर फल खाकर आये हैं—पौराणिक कथाओं के ययाति हैं, सदासर्वदा—सदाबहार.

"जेल आदमी को उग्र ही बनाता है. है न, सुकीर्ति? तुम्हारी गरम-गरम बातों की जानकारी मुझे बराबर मिलती रही है."

"और कांतिमोहन?"

"वह तो भयानक है—नक्सलाइट. आपका आदेश हो तो उसे हम जेल के अंदर गैर राजनैतिक दर्जा भी देने के लिए तैयार हैं."

डॉ. अतुल इत्मीनान की सांस लेते हैं, जैसे कांतिमोहन के आतंक के कारण ही यहां आये हों. बोले, "मेरे खिलाफ आपकी पार्टी से कमजोर आदमी को टिकट मिलना चाहिए."

"सब कुछ मैंने सोच लिया है. मगर मेरी मदद के लिए एक शर्त है, सर."

"वह क्या?"

"जीतने के बाद मेरी पार्टी में आ जाना होगा."

"सरकार बनायेंगे?"

"जरूर बनाएंगे."

"डॉ. सिन्हा, डॉ. वेद और गुरुप्रसाद जैसे लोगों के लिए भी कुछ होगा? स्वामी-भक्तों का उद्धार तो होना ही चाहिए."

मंत्रीजी ठठाकर हंसते हैं. "आपके लिए उपकुलपति का पद या फिर लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष-पद क्यों, सर?"

"अभी कुछ नहीं. चुनाव हारने के बाद."

"हारने का कहां सवाल है. आपको तो जीतने के बाद मेरी पार्टी की सरकार में मंत्री बनना है."

डॉ. अतुल का मासूम चेहरा खिल जाता है. युनिवर्सिटी में दो दर्जन लड़के उनके लिए कब से चिल्ला रहे हैं. यह स्थिति रही तब तो मुख्यमंत्री बनने में भी कोई झंझट नहीं है.

"लड़के आपके गांव जायेंगे?"

"कम-से-कम दो सौ." अचानक उन्हें खयाल आता है, "एक लड़का है, रोहित, उसे छुड़वा दें. वह लड़का मेरे लिए जरूरी है."

"जेल में सभी कम्युनिस्ट रह गये हैं."

"रोहित को छोड़ना होगा. जेल में उसका साहित्य मर रहा है."

"एक सप्ताह बाद जिसे आप कहेंगे, छोड़ दिया जायेगा. बस, जरा इधर आप लोग जमकर दो-चार दिन क्लास चला दीजिये. सब कुछ ठीक हो जायेगा."

"तभी तो कांतिमोहन जैसे लोगों के इस झूठ को सबक मिलेगा कि देश में जनता की लड़ाई शुरू है."

ऐसा लगता है कि मंत्रीजी को डॉ. अतुल की बात समझ में नहीं आयी हो. शायद उनकी पहुंच भी उस गहराई तक नहीं है. उन्होंने बड़ी सहजता से पूछा है, "इस कांतिमोहन से आपको बड़ा आतंक है. मैं तो यही समझ रहा था कि भय खाली सरकार को ही है."

"ऐसी बात नहीं है." डॉ. अतुल उन्हें समझाते हैं, "लेकिन उसके पीछे बहुत ज्यादा लड़के हैं."

मंत्रीजी उनकी चिंता को हल्का करना चाहते हैं, "सब कुछ ठीक हो जायेगा. कॉलेज एक सप्ताह भी चलने दें. चुनाव एक भारी करिश्मा है. हम टिकट भी तो उनके दुश्मनों को ही देते हैं."

डॉ. अतुल को उनसे बतियाकर संतोष महसूस हो रहा है.

उन्हें विचार हुआ कि सरकार से बातचीत के बाद हड़तालियों से भेंट जरूरी है. उन्हें भीतरी बातों का कहां पता है. डॉ. अतुल समझते हैं कि जनता असली मुद्दे पर कहां और कैसे भटक जाती है. वे जिसे जनता कहते हैं वह जनता तो अपनी मुट्ठियों में बंद है. जब चाहें कठपुतली का नाच करा दें.

उसी दिन से डॉ. अतुल के दिन काटे नहीं कट रहे हैं. करने के लिए कुछ भी नहीं है. यह भी मन होता है कि एकाध सप्ताह के लिए कहीं चले जायें. विश्वविद्यालय भी खुल गया है. क्लास चल रहे हैं. सर्वत्र शांति है, जैसे इसके पूर्व कुछ भी हुआ ही नहीं हो. फिर भी यह कैसा उत्साह है, एकदम मरियल और कुचला हुआ. भीगी बिल्ली की तरह सिकुड़ा. जो छात्र कल तक आक्रामक थे, वे कितने निस्तेज लग रहे हैं.

इन छात्रों को क्या हो गया है? जो साथी जेल में ही रह गये हैं उनके लिए इन्हें बेचैनी क्यों नहीं है? अखबारों की सुर्खियां भी मरी हुई हैं. छात्रों की मांगें जहां थीं, वहीं हैं. सरकार की तरह बाहरी लोग भी बुनियादी परिवर्तन के एकदम पक्ष में नहीं हैं. सरकार ने विभागों में नियुक्तियों के लिए आश्वासन भर दिया है. अखबार इसी बात को कई दिनों से उछाल रहे हैं. गलत और अयोग्य शिक्षकों की नियुक्ति के बारे में सरकार की तरह अखबार भी चुप हैं. अखबार वहीं हैं, जहां डॉ. अतुल हैं. रोज-ब-रोज नये-नये कॉलेज खुलते जा रहे हैं. इसी अनुपात में निरक्षरता और गरीबी भी बढ़ती जा रही है. डॉ. अतुल जानते हैं कि इस स्थिति में कुछ भी नहीं होगा, केवल चुनाव जीता जा सकता है.

वे किस नयेपन के लिए छटपटा रहे हैं, यह स्वयं के लिए भी एक भारी पहेली है.

डॉ. अतुल एक बार गांव जाकर लौट आये हैं.

रोहित उठना ही चाहता है कि डॉ. सिन्हा टोक देते हैं, "अतुल को तुम्हारी पार्टी समर्थन दे रही है?"

"उनके क्षेत्र से मेरी पार्टी का कोई उम्मीदवार नहीं है. फिर तो ये निर्दलीय उम्मीदवार हैं, निर्दलीय उम्मीदवार के समर्थन में पार्टी को क्या एतराज हो सकता है."

"तुम अतुल के क्षेत्र में कब जा रहे हो?"

"इसी सप्ताह अपनी टीम के साथ जाने वाला हूं." रोहित बात बदलता है, "इन्होंने व्ही.सी. का चांस छोड़ दिया है. है न, सर?"

"डॉ. अतुल का यह महान त्याग है." डॉ. सिन्हा लालची की तरह अपने होंठ चाटने लगते हैं. "डॉ. अतुल के दोनों हाथों में लड्डू हैं."

"आप भी तो कम भाग्यशाली नहीं हैं, सर."

"अतुल मुझसे भारी पड़ जाता है. लेकिन देख लेना रोहित, सत्ता में फिर कांग्रेस ही आयेगी."

"आपको ज्योतिष में भी रुचि है क्या, सर?"

"अखबारों का टोन यही है."

डॉ. सिन्हा यहां रुकने पर और भी चाट सकते हैं. वह फौरन वहां से चल देता है.

दूसरे ही दिन रामसिंह गिरफ्तार कर लिया जाता है. रोहित अपने आपको तौल रहा है. इन साथियों जैसा साहस और ईमानदारी उसमें नहीं आ पाती है. उसकी चेतना को घुन किधर से खा रहा है? तब क्या कहानीकार रोहित एक दोहरे आदमी का नाम है? साहित्य में उसकी समझ है कि गांधीवाद और सामंतवाद कभी के समाप्त हैं. वर्गों में बंटकर सारा देश आमने-सामने खड़ा हो गया है. प्रो. कांतिमोहन कह रहे थे कि कम्युनिस्ट पार्टियों में अब वह धार नहीं रह गयी

आसपास बिखरी कहानियां

गद्दा लिहाफ

▣ राकेश विशाल

"क्या हुआ?" घर की जमादारनी ने मझली बहू से पूछा था, रोने चिल्लाने की आवाजें सुनकर.

"पापा का शरीर पूरा हो गया है!" रोते हुए ही कहा था मझली बहू ने!

"क्या. . . ?"

"लालाजी गुजर गये!" आश्चर्य से उसका मुंह खुला रह गया था, दुख से सराबोर हो गयी थी सुनकर वह. अचानक उसकी निगाह बाहर पड़े 'लालाजी' के बिस्तर पर ठहर गयी थी. एक हल्की-सी बिछोने की चांदनी और हल्की-सी चादर पड़ी थी. उसने एक ठंडी आह भरी थी. . . अफसोस की गहरी लकीरों से उसका चेहरा भरता चला गया था.

'दो महीने और जी जाते लालाजी, तो सर्दियां आ जातीं, कम-से-कम गद्दा-लिहाफ तो मिल जाता. . .' वह मन ही मन बड़बड़ाई थी. □

● 9/177, गली न. 3 चौक हरनाथपुरा, सहारनपुर

है जो धार स्वतंत्र जनसंगठनों और जनसंघर्षों में है. अगर इन्हें व्यापकता मिले तो व्यवस्था-परिवर्तन की दिशा को साफ-साफ समझा भी जा सकता है.

वह कई दिनों से डॉ. अतुल को एक ताजा कहानी सुनाने के लिए बेचैन था. रात गांव से लौटते ही उन्हें सुनायी तो उनका कमेंट था, "यार, अगर यह मेरी कहानी होती तो इसमें यही दिखलाता कि भूख लगने पर वह बूढ़े मालिक की थाती उस गट्ठर से भी मिठाइयां और फल खोलकर खा लेता है और गट्ठर को उसी तरह संभालकर बांध देता है. लेकिन मैं तुम्हारी तरह कहानी-लेखक तो हूं नहीं, क्या करूं?"

कहानीकार रोहित इस कमेंट से रात भर दुखी रहा है. पूरी की पूरी कहानी बदल देने की जरूरत है क्या? जब एक बूढ़ा भूख बर्दाश्त नहीं कर रहा है तब ये तमाम युवक और छात्र भूख, जहालत, डॉ. अतुल और डॉ. सिन्हा को कैसे बर्दाश्त कर रहे हैं? रामसिंह में सचमुच बचकाना भटकाव है? तब भी उसे रामसिंह की गिरफ्तारी बुरी तरह कचोट रही है. उसकी तरह के सैकड़ों छात्र इस युनिवर्सिटी में हैं. रामसिंह अकेला कैसे है?

"इस सरकार को नष्ट हो जाना चाहिए सर," वह डॉ. अतुल के सामने झुंझलाता है.

"क्या बात है?"

"रामसिंह का क्या कसूर था?"

"तुम बराबर दुविधा में क्यों रहते हो?"

"कांग्रेस को हारना चाहिए, सर!"

"इसीलिए तो कांग्रेस से टिकट नहीं मांग रहा हूं."

"सर, क्या रामसिंह गुंडा है?"

"किसने कहा?"

"पुलिस और यहां के जिलाधिकारी ने."

"केवल कहानियां लिखो, रोहित. आज की राजनीतिक ऊहापोह में कुछ भी होने को नहीं है. देश में साक्षरता इतनी कम है कि तुम्हारी कहानियों को अभी पुलिस और जिला अधिकारियों से कोई भय नहीं है."

रोहित की आदत है कि डॉ. अतुल से असहमत होते हुए भी उनसे समझौता नहीं तोड़ता. गुस्सा भी आता है, मगर बेचारा रोहित करे क्या? कैरियर का सवाल है. यह कैरियर का चक्कर न होता तो डॉ. अतुल को आसानी से ठेंगा दिखलाया जा सकता है.

"मैंने एक बात सुनी है, सर. सुकीर्ति दी चुनाव लड़ेंगी."

"क्या कहा, सचमुच?" डॉ अतुल को अचरज और खुशी दोनों होती हैं.

"मैं जानता हूं."

"कहां से लड़ेंगी?"

"आप की ही ओर से."

"हां, वह मेरी ओर की रहनेवाली है. मगर गुप्ता तो उत्तर प्रदेश का है."

"मुझे आश्चर्य होता है."

"मुझे कोई आश्चर्य नहीं होता," डॉ. अतुल हंसते हैं. "सभी चुनाव लड़ने की मुद्रा में हैं. इस वक्त चुनावों को लेकर अखबारों में बड़ा रस आ रहा है."

"कैसा रस, सर?"

"अखबार-रस, और कैसा रस?" डॉ. अतुल जोरदार ठहाका लगाते हैं.

उन्होंने चुनाव की पूरी तैयारी कर ली है. सारा इलाका निरक्षर, नासमझ और गरीब है. बहुत अच्छा मौका है.

जीत सुनिश्चित है. जो भी चुनाव-प्रचार के लिए तैयार है उससे डॉ. अतुल मुफ्त में काम कराना नहीं चाहते. उचित पारिश्रमिक के साथ तैयार हैं. उनका लक्ष्य बहुत बड़ा है. मुख्यमंत्री बनना है. उपकुलपति की तुलना में शिक्षा मंत्री का पद भी बहुत बड़ा है. यही कारण है कि उन्होंने अभी उपकुलपति के चांस को ठुकरा दिया है.

"सुखदेव भी हमारे हाथ चलेगा, सर."

"पटठा बड़ा काम का आदमी है. मेरे साथ चलने का वायदा किया है."

"बहुत गरीब है लेकिन. . ."

"जो कहोगे करूंगा. रिचर्ड का कुछ पता चला?"

"नहीं, सर."

"उसे परीक्षा नहीं देनी है?"

"क्या कहूं, सर."

"लगता है, दीपा के साथ आराम-सुख के सामने कैरियर की उसे कोई चिंता नहीं है."

"दीपा और रिचर्ड भी आपके गांव पहुंचेंगे, सर."

डॉ. अतुल दीपा का नाम आते ही बहुत ज्यादा सिकुड़ जाते हैं. मगर रिचर्ड से उन्हें विशेष घृणा है और सरल आदमी से बदला लेना भी बहुत आसान है. दीपा का अपहरण करने में ही आत्मा को विशेष शांति है. वे आल्हाद में गालों को सहलाने लगते हैं, जैसे कहीं-कहीं अटके स्मृति-चिह्न अभी तक शेष हों.

"दीपा मेरे चुनाव में बहुत काम आयेगी."

"कैसे, सर?"

"वहीं चलकर बताऊंगा."

अचानक डॉ. अतुल चौंकते हैं—सामने सुखदेव के साथ दीपा और रिचर्ड खड़े हैं. तीनों लपककर उनके पांव छूते हैं. दीपा पूछती है, "अच्छी तरह हैं न, सर?"

"कहां थे इतने दिनों से? लगता था, भारत छोड़कर चले गये हो?"

"नहीं, सर. युनिवर्सिटी बंद थी. दोनों इधर-उधर घूम रहे थे. सोचा सामने रहने से खामख्वाह लोगों का गुस्सा उभरेगा. लोग हमारे खिलाफ तरह-तरह से हंगामे खड़े करते रहेंगे." दीपा हंसती है.

"डिपार्टमेंट में आती."

"डरती थी."

"तब दीपा, मेरे क्षेत्र में चल रही हो?"

दीपा उल्लास से कहती है, जैसे सब कुछ भूल गयी हो, "जरूर, सर. सुना है, सुकीर्ति दी आपका विरोध करनेवाली हैं."

"मतलब?"

"यह नोटिस आपने नहीं पढ़ी?" पर्स से निकालकर बढ़ाती है. इसके बाद रोहित लेकर पढ़ने लगता है.

छाया : नीरज सिन्हा

पचास हजार साल!

परियों और परिंदों के संसार से निकला जमाने का सच और पिछले पचास हजार साल से पीढ़ी दर पीढ़ी सुनायी जा रही देश-विदेश की कहानियों का दस्तावेज—

सारिका

लोक कथा विशेषांक

डॉ. अतुल अनायास ही हंसते हैं. "सचमुच मेरे चुनाव में बड़ा मजा आयेगा. रोहित को ठीक पता था. सुकीर्ति मेरे खिलाफ चुनाव लड़ेगी. उसका प्रचार शुरू हो गया है. सुन, रोहित. हमें भी जवाब में नोटिस तैयार करनी होगी."

रोहित कुछ जवाब नहीं देता है.

"इसे तो चुटकी बजाते साफ कर दूंगा. मेरा चरित्र हनन इतना आसान नहीं है. तैयार हो रोहित? अभी गांव चलता हूं."

"तैयार हूं, सर."

कुछ क्षणों तक उनके बीच सन्नाटा रहता है. इस सन्नाटे को दीपा ही तोड़ती है. "मेरे रिसर्च का क्या होगा, सर?"

"चुनाव के बाद पूरा करा दूंगा."

"कहीं आप मंत्री या मुख्य मंत्री बन गये तब?"

"तभी तो जनता की नजर में भी यह महान काम होगा." वे सुखदेव की ओर देखते हैं, "मुझे खुशी है सुखदेव कि मैंने तुम्हें काम देने का वायदा पूरा कर दिया है."

"जब तक इस धरती पर रहूंगा आपका एहसानमंद रहूंगा, सर."

सुखदेव को एल्हाम है कि डॉ. अतुल चुनाव के बाद कहीं मंत्री-वंत्री बन गये तो उसे अपना पी. ए. भी बना सकते हैं.

रिचर्ड की आंखें लाल हैं, इसका ध्यान डॉ. अतुल को अभी आया है. वे पूछते हैं, "रिचर्ड, तुम नशे में तो नहीं हो?"

"नहीं, सर." वह उसी सोफे पर लेट जाता है. "ये सिकुड़े हुए बाल कितने घिनौने हैं. काले तो हिंदुस्तानी भी कहलाते हैं. मगर इनके बाल इतने सिकुड़े या कुढ़े हुए नहीं है. मुझे इससे घोर नफरत है. प्रभु ईसा की कसम सर, आप मुझे मारिये. इसने आपकी इज्जत ली है. यह मेरी पत्नी है, सर. मैं क्षमा मांगता हूं. . . क्षमा. . . सर. . . !"

रिचर्ड अचानक खुद को तमाचे लगाता है. हालांकि यह उसकी पुरानी आदत है. ज्यादा पी लेने के बाद इसी तरह करता है. रोहित के गाल तक झनझनाने लगते हैं. दीपा उसके दोनों हाथ खींचकर अपने गालों से सटाती है. वह फिर बड़बड़ाता है, "प्रोफेसर समझते हैं, मुझसे तुम्हारा संबंध शारीरिक और नकली है. असली और सहज कैसे होगा?"

वह दीपा की बांह को अपनी गर्दन के नीचे दबा लेता है.

"हम पति-पत्नी हैं. मैंने प्रेम करने के बाद तुमसे विवाह किया है."

"तुम्हारा यह विश्वविद्यालय यह नहीं मानता कि मुझसे कोई प्रेम भी कर सकता है."

मगर डॉ. अतुल तो इन सारी स्थितियों से फिलहाल निर्विकार और निरामिष थे. उन्हें चुनाव के सपने बड़े जोर से आने लगे हैं.

"तब हम कायरों की जमात कल सचमुच डॉ. अतुल के साथ प्रस्थान कर जायेगी?" परंतु सभी खामोश हैं. रिचर्ड की बातों की ओर किसी का भी ध्यान नहीं है. □

● यह उपन्यासिका पुस्तक रूप में वाणी प्रकाशन, कमला नगर, दिल्ली से शीघ्र प्रकाशित हो रही है.

पखवारे की पुस्तकें

शिल्प की बढ़ती जटिलताओं के बावजूद

▣ मूलचंद गौतम

हर व्यवस्था के अपने कुछ कायदे होते हैं, जिनके मुताबिक वह भीतर-बाहर मौजूद लोगों के नुकीले कोनों को झाड़कर उन्हें सपाट चेहरेवाली जिंदा 'ममी' में परिवर्तित करती रहती है. निरंतर चलनेवाली इस प्रक्रिया में तंत्र का एक वर्ग व्यवस्था की जरूरतों के मुताबिक खुद को ढाल लेता है, दूसरा वर्ग न ढाल पाने के कारण उसके क्रूर अमानवीय शोषण, अन्याय के नीचे पिसता रहता है. यह दूसरी स्थिति भी इस वर्ग को व्यवस्था की शर्तों पर ढलने को मजबूर करने का कार्य करती है. **'जगत्तारनी एवं अन्य कहानियां'** में संग्रहीत गिरिराज किशोर की पांच कहानियां शिल्प की बढ़ती जटिलताओं के बावजूद, व्यवस्था के नौकरशाही तंत्र के विभिन्न स्तरों पर अस्तित्व के लिए संघर्षशील बेहद ईमानदार और संवेदनशील लोगों की आंतरिक टूटन के यथार्थ को कलात्मक शर्तों के साथ सामने रखती हैं. चूहा, घोड़ा और जगत्तारनी के प्रतीक इन कहानियों में निहित व्यंग्यार्थ को व्यापक आयाम प्रदान करते हैं. यद्यपि कहानी के क्षेत्र में फैंटेसी, प्रतीक और मिथ का सृजनात्मक उपयोग नया नहीं है, लेकिन जिस कौशल से गिरिराज किशोर ने इनका सार्थक और मूल्यवान उपयोग किया है, उससे इन कहानियों का महत्व बहुत बढ़ जाता है.

कथ्य के स्तर पर व्यवस्था की विसंगतियों और इनके विरुद्ध चलने वाले संघर्ष को लेकर गिरिराज किशोर की ये कहानियां आपस में जुड़ी हुई और एक-दूसरी की विकसित स्थितियों को प्रस्तुत करती हैं. कहानीकार की पैनी दृष्टि सत्ता और व्यवस्था के चरित्र की समग्र बारीकियों और पेचीदगियों को यथार्थ रूप में उभारने के प्रति सक्रिय रही है. जटिल आंतरिक संरचना वाली कहानी **'वीरगति'** शेर-चूहे, मालिक-नौकर के संबंधों के आधार और विपरीत परिस्थितियों में उनकी भूमिका में चूहे और नौकर की यंत्रणा, भयपूर्ण मनःस्थिति को सामने लाती है. इस त्रासदायक हांके से पीड़ित व्यक्ति सच्चाई और न्याय के पक्षधर बुद्धिजीवियों से सुरक्षा की मांग के बदले ज्यादा अकेला और असुरक्षित हो जाता है. अतिथि सत्कार के लिए आतुर धर्मभीरु गृहस्वामिनी द्वारा शरणागत व्यक्ति की मौजूदगी में, अचानक घर में घुसे निरीह चूहे की हत्या करा देना कहानी की विडंबना को सांकेतिक व्यापकता में बदल देता है. **'जगत्तारनी'** कहानी सृष्टि की शुरुआत से अब तक परंपरागत अनुभव का दंभ पालने और युवाशक्ति की उत्साहपूर्ण जोखिम उठाने की प्रवृत्ति की उपेक्षा करने वाली पुरानी पीढ़ी के द्वंद्व का प्रतीकात्मक बयान है. जगत्तारनी के गहरे जल में तिरछी होकर अटकी नाव को बाहर निकालने के नजरियों में व्यावहारिक किंतु डरपोक पुरानी पीढ़ी के लोगों की असफलता और नयी पीढ़ी की आस्था और उत्साहपूर्ण स्थिति को एक नया अर्थ मिलता है.

• गिरिराज किशोर

इस संग्रह की **'घोड़े का नाम घोड़ा'**, **'रघुनाथ कृपा'** और **'घोड़ा चला अढ़ाई घर'** कहानियां व्यवस्था के तंत्र में मंत्री, अफसर और क्लर्कों के स्तर पर चलनेवाली जद्दोजहद और मूल्यहीनता के बीच अपराजित व्यक्ति की नियति और संघर्ष से अमूर्त और मूर्त दोनों स्तरों पर जुड़ी हुई हैं. गिरिराज किशोर के लेखकीय अनुभव को इन कहानियों में एक नयी ऊर्जा और रचनात्मक आयाम मिला है. सबसे बड़े नत्थू और छोटे नत्थू की यांत्रिक प्रक्रियाओं से गुजरते घोड़े और अफसर की एक जैसी नियति इन कहानियों को जोड़ती है. यंत्रणा और निरंतर अपमान को सहते ये प्राणी अंतर में स्वतंत्रता की ललक तो लिये रहते हैं, लेकिन परतंत्रता के बदले में मिलनेवाली सुख-सुविधाएं इन्हें इसी कठघरे में कैद रहने को मजबूर करती हैं. गिरिराज किशोर ने इन कहानियों में इस प्रक्रिया के सूक्ष्मातिसूक्ष्म रंग और रेशों को पकड़ा है. पित्तरवाणी को न जानने वाले भूपण बंद्योपाध्याय को आद्यंत जिस अपमान और यातना को सहना पड़ता है, वह नौकरशाही की शर्तों, योग्यताओं और मानसिकता का पर्दाफाश करती है.

गिरिराज किशोर के पिछले यातनापूर्ण अनुभवों को इन कहानियों में पूरे तीखेपन के साथ देखा जा सकता है. ये कहानियां कलात्मक अनुशासन के साथ व्यवस्था के असली चरित्र को नंगा, बेपर्दा करती हैं, इसलिए सार्थक और मूल्यवान होने के साथ कथाकार की परिपक्व दृष्टि का संकेत देती हैं. □

▣ जगत्तारनी एवं अन्य कहानियां : गिरिराज किशोर, प्रकाशक : संभावना प्रकाशन, रेवती कुंज, हापुड़-245101

अनुत्तर योगी : समग्र भारतीय चिंताधारा का उपन्यास

▣ कुबेरनाथ राय

सृष्टि का आदि लक्ष्य और चरम लक्ष्य है आनंद या लीला-रस, परंतु इस 'आदि' और 'चरम' सीमा के बीच चौबीस तत्वों का लंबा-चौड़ा कारबार है, जिसे 'स्थिति' कहते हैं. स्थितिमान सृष्टि-सत्ता में चरम लक्ष्य केवल लीला-रस ही नहीं हो सकता. स्थिति में कर्मयोग की जरूरत होती है और यहां पर लक्ष्य बन जाता है 'ऋत' या 'धर्म'. यह ऋत-साधना ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चार पुरुषार्थों की आकृति लेती है. आनंद ऋत की बांसुरी पर ही बजता है. अनृत का प्रवेश होने पर इसकी धुन में बेसुरापन आ जाता है और तब जरूरत होती है 'धर्म संस्थापनार्थं' अवतार लेने की. अतः सृष्टि में पौरुष की भी जरूरत है. केवल आनंद से ही काम नहीं चलने का. यही कारण है कि साहित्य केवल 'रस' या आनंद का वितरण ही नहीं करता, बल्कि वह भुजा उठाकर धर्म के लिए अरण्य-रोदन भी करता है और पौरुष प्रधान चरित्रों की सृष्टि करके हमारी चेतना को उत्कर्ष भी प्रदान करता है. मुझे **वीरेंद्रकुमार जैन** की यह कृति महाभारत के नजदीक लगी. वस्तुतः यह बौद्धकालीन महाजनपद युग का महाभारत ही है. तत्कालीन इतिहास-प्रवाह का चित्र देते हुए उसके मध्य एक 'पुरुषोत्तम' आकृति का छायाचित्र (सिलहुट) उपस्थित करना ही इसका मुख्य उद्देश्य है. उस इतिहास-प्रवाह में रस और पुरुषार्थ के अविराम संघात एक ही साथ बजते हैं. बिंबसार, चेलना, कुणीक अजातशत्रु, अभयराजा, उदयन और चंडप्रद्योत के माध्यम से, परंतु सबको अतिक्रांत करते हुए एक अ-मांसल 'छाया चित्र' विकसित होता चलता है राजकुमार वर्द्धमान की पुरुषोत्तम मूर्ति का. यह कृति उपन्यास के ढांचे में उपस्थित किया गया एक 'चरित काव्य' है.

इस उपन्यास का उद्देश्य है अनुत्तर योगी की पुरुषोत्तम छवि को उत्कीर्ण करना. इसलिए उसके काम, क्रोध, मोह से पीड़ित अन्नमय-प्राणमय स्तरों का संघर्ष व्यक्त न करके उसकी अस्मिता को ही व्यक्त किया जाता है, जो विश्व संवित या महाचिति-प्रवाह का अंग बन चुकी है. उपन्यासकार भगवान महावीर के संदर्भ में जो कुछ लिखता है, वह काल के भीतर घटित होती हुई अकाल-कथा है, अनुत्तरा कथा है.

'अनुत्तर योगी' में तीर्थंकर के दायित्व-बोध का शुरू से अंत तक 'आंतर्ध्वनन' (आरकेस्ट्रा) उपस्थित किया गया है. बिंबसार, उदयन, चेलना, भरत चित्रकार, अभय राजा आदि के माध्यम से एक से एक चटक ध्वनियां और अन्न-प्राण-मन के कोषों की उत्तेजक रागिनियां उपस्थिति होती हैं, परतु इनके सारे इशारे नायक की दायित्व-यात्रा को ही स्पष्ट करते हैं. यों स्वयं नायक का कोई मांसल तीन आयाम वाला चित्र स्पष्ट नहीं होता, बल्कि बिंबसार या अभयराजा काफी जीवंत है उसकी तुलना में, परंतु यह दोष विषय की आकृति के कारण है. महावीर एक निरंजन, वर्णमुक्त, पारदर्शक श्रमण चरित्र है, स्फटिक निर्मल और दीप्त. दीप्ति ही एकमात्र वर्ण है. अतः उन्हें सतरंगी वर्ण पट में बिंबसार और अभयराजा की भांति उपस्थित कैसे किया जा सकता है. इसी से तीर्थंकर महावीर का पोर्ट्रेट, बाल-जीवन के एकाध अध्यायों को छोड़कर सर्वत्र रूप और काल के 'चौथे आयाम' में व्यक्त किया गया है. बिंबसार, अभय, कुणीक या उदयन अपरा की चित्रसृष्टि के अंग हैं, परंतु तीर्थंकर परा की पारदर्शक दीप्ति को ही व्यक्त करता है. इसी से मैंने प्रारंभ में ही तीर्थंकर के इस पोर्ट्रेट के लिए 'छायाचित्र' (सिल्हुट) शब्द का प्रयोग किया है. 'मन' और 'काल' के चौथे आयाम की भाषा लिखना और समझना दोनों कठिन काम हैं. श्री जैन को संभवतः इस चौथे आयाम का व्यावहारिक अनुभव है. द्वितीय खंड के अंतिम अध्याय, जिनमें मन के पार की यात्रा एवं आत्मा के परमाणु का विस्फोट व्यक्त हुआ है अथवा प्रत्येक खंड के अनेक अनुभव जो 'अगम' की मनोभूमि से जुड़े हैं, इस बात के सबूत हैं. लेखक के मन और काल के चौथे आयाम में उद्घाटित होनेवाले स्फटिक पारदर्शक की 'पोर्ट्रेट' पृष्ठभूमि और हाशिये को नव स्थायी भावों के, विशेषतः रति, करुणा और विराग के अत्यंत चटक रंगों से मोहक मुखाकृतियों से सज्जित कर दिया है.

इस उपन्यास के अंदर चिंताधारा का वैदिक-अवैदिक, ब्राह्मण-बौद्ध-जैन समस्त संयुक्त उत्तराधिकार व्यक्त हुआ है. वस्तुतः तीर्थंकर महावीर इसमें जैन पैगंबर बनकर नहीं, भारतीय पैगंबर या 'पुरुषोत्तम' बनकर व्यक्त हुए हैं. बहुत-सी ऐसी बातें हैं, जो कट्टर जैनों के लिए खटकनेवाली भी हो सकती हैं. लेखक ने पग-पग पर ब्राह्मण धर्म 'श्रुति' के सही रूप को अंगीकृत करने की चेष्टा की है. साथ ही लक्ष्य की दृष्टि से भी यह शुद्धतः भारतीय उपन्यास है और 'रस' (आत्मोपलब्धि) तथा 'पुरुषार्थ' (चेतना का उत्कर्ष और शील की प्रतिष्ठा) की भूमियों को ही गंतव्य मानकर सारी कथा-यात्रा चलती है. विधा की दृष्टि से अवश्य ही यह 'आधुनिक' है. यह उपन्यास है और उपन्यास की विधा के सारे अंतर्निहित नियमों एवं अपेक्षाओं को स्वीकार करके चलता है. इतने बड़े 'स्केल' पर और समग्र भारतीय चिंता के उत्तराधिकार को एक ही बिंदु पर इस प्रकार उपस्थित करने का प्रयत्न हिंदी में प्रथम बार हुआ है और शायद समस्त उत्तर भारतीय भाषाओं में भी. □

▣ अनुत्तर योगी, वीरेंद्रकुमार जैन, वीर निर्वाण ग्रंथ प्रकाशन समिति, इंदौर.

अहं की तुष्टि और धन की मुष्टि

इतने सुखों के बीच

▣ हरमन चौहान

राजेंद्रकुमार शर्मा के नवीनतम कहानी संग्रह—'इतने सुखों के बीच' (प्रकाशक : मिलिंद प्रकाशन, हैदराबाद, मूल्य : पच्चीस रुपये) को पढ़कर घोर निराशा होती है. संग्रह में कुल आठ कहानियां हैं और लगभग सभी कहानियां बेहद कमजोर लगती हैं. संकुचित दृष्टिकोण में परिवार-समाज की व्यर्थ ऊहापोह और कारखाने के माहौल में फोरमैन की हैसियत से काम करने वाले के आत्मकथ्य में गुंथी हुई कहानियां वर्णन शैली के न होने से जमती नहीं हैं. संग्रह के शीर्षक वाली कहानी—'इतने सुखों के बीच' भाभी और देवर के असहज वार्तालाप में व्यर्थ लंबी लगती है. घटिया संवादों से कहानी की नहीं, लेखक की इमेज खंडित होने की आशंका रहती है. संवाद अन्य कहानियों में भी घटिया हैं. लेखक अंग्रेजी शब्दों के मायाजाल में प्रगतिशील का भ्रम पालता लगता है. 'कोल्हू', 'चक्रव्यूह', 'कड़ी' या 'रोड़े' कहानियों में लेखक विभिन्न सामाजिक समस्याओं को उचित रूप में नहीं उठा सका है.

भाषा, शैली और शब्दों के साथ खिलवाड़ करना साहित्य में कुछ लेखकों का मुख्य उद्देश्य बन गया है. इस संग्रह में व्याकरण की भयंकर 'रेड़' मारी गयी है. उदाहरण के तौर पर 'बसेरा' कहानी का यह एक अंश ही काफी है—

"भाई-भाभी की उपेक्षाएं, बेतुकी-बातें और रिमार्क्स, कटु-कसैला व्यवहार आदि भी जब मुझे अपने निश्चय से, दृढ़-निश्चय से नहीं डिगा पाये तो उन्होंने रिश्तेदारों, परिचितों और मित्रों को कहना शुरू कर दिया कि वे मुझसे मकान खाली करवा दें. रिश्तेदार, परिचित, मित्र, मुझसे मकान खाली करवाने के बजाय मुझे उकसाने लगे. . . मुझे भाई-भाभी की इन हरकतों(?) पर गुस्सा भी आता और वहिशाना-हंसी(?) भी आती है. आखिर वे स्वयं मुझसे सीधे-सीधे बात क्यों नहीं करते?"

यही नहीं, हर कहानी में बार-बार 'तो-तो', 'ये-ये' अथवा अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी खूब खटकता है जैसे—'रेस्पेक्टेड प्रिंसिपल, प्लीज इनफार्म दि डिपार्टमेंट इमिजिएटली, दैट आई एम नाट फिट फार यू' या पृष्ठ : 32 पर 'हाय, हाउ कोमल आर योर हाथ.' इसी तरह शब्द भी देखिए—'खाहमख्वाह', 'साबिका', 'ताबड़-तौबड़', 'यकबक', 'होते-सातें', 'ताबे-जिंदगी' आदि प्रेस की भूलें जाने दीजिए, लेकिन जब लेखक व्याकरण की भयंकर भूलें करता है तो वे क्षम्य नहीं हैं.

प्रायः हिंदी में एम. ए. या पी-एच. डी. कर लेने वाले ऐसा भ्रम पाल लेते हैं कि वे भी हिंदी साहित्य की कोई महान हस्ती बन गये हैं और इसी भ्रम में व्याकरण को ताक में रखकर पोची भाषा-शैली में धड़ल्ले के साथ कचरा तैयार करते रहते हैं.

अपने अधकचरे साहित्य का प्रकाशन वे इधर-उधर जुगाड़ करके करवाते रहते हैं या स्वयं कर लेते हैं. समय, पैसा और कागज का मूल्य उनकी समझ से परे होता है. यह अहं की तुष्टि या धन की मुष्टि का परिणाम होता है और उसका दंड 'इतने सुखों के बीच' की तरह गरीब पाठक को समय और पैसे से भोगना पड़े तो कोई आश्चर्य नहीं है. □

पृष्ठ 61 से जारी . . .

विदेशी साहित्य का इराकी साहित्य पर कितना प्रभाव आप देखते हैं? भारतीय साहित्य के बारे में आपने बताया था कि आप टैगोर से आगे नहीं बढ़ पाये (छिटपुट अपवाद अलग बात हो सकते हैं), अन्य विदेशी साहित्य का इराकी साहित्य पर क्या प्रभाव है?

—सन् 50 के आसपास अस्तित्ववाद का बोलबाला यहां पर भी था और अब यहां उसे कोई पूछता भी नहीं. गोर्की को यहां बहुत दिलचस्पी से पढ़ा जाता रहा है. सोवियत लेखक हैं दोस्तोयव्स्की, लेकिन उनके साहित्य में साम्यवाद की गंध ढूंढने के बजाय लोग मानवीय जीवन के बड़े खूबसूरत पहलुओं से जोड़कर उन्हें पढ़ते रहे हैं. दोस्तोयव्स्की इराक में बहुत लोकप्रिय रहे हैं. लेकिन जैसा मैंने पहले कहा हमारे यहां अनुवाद का चैनल नहीं खुल पा रहा है. हम इसकी कोशिश में हैं ताकि साहित्य के जरिये अन्य देशों की खिड़कियां इस धरती पर खुलें.

और इस तरह बात जहां से शुरू हुई थी वहीं फिर आ गयी. और हम दोबारा कभी फिर मिलने के वादों के साथ 'खुदा हाफिज' कहकर बाहर. . .

बाहर देखा कि इनामिल का एक बहुत ही खूबसूरत म्यूरल कोलाज बगीचे में बना हुआ है. पत्रिका के दफ्तर का स्थापत्य भी ऐसा कि पारंपरिक अरबी स्थापत्य में आधुनिकता के धागे पिरोये गये हैं. परंपरा का अलंकरण जिंदा भी है और आधुनिकता के सांचे में नहा भी रहा है. . . बिल्कुल आज के इराकी-लेखन की तरह. जरूरत के मुताबिक इतिहास के पन्नों से विषय पकड़े जा रहे हैं. जैसे—अठारहवीं शती के मध्य में इराक पर नादिर शाह द्वारा किये गये हमलों को हैदर महमूद ने एक नाटक में ढालकर ईरानियों की हार के ऐतिहासिक संकेत दिये हैं. कहते हैं, मोसुल में अभी हाल में इस नाटक को जब खेला गया तो एक सप्ताह तक हाल में तिल धरने की जगह न मिली. □

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय : दृष्टिहीनता की बेबसी में भी लोग आगे बढ़ते रहे

'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' पिछले दिनों खासी चर्चा का केंद्र रहा है. . बहरहाल भारतीय रंगमंच के एक जाने-माने और अनुभवी व्यक्ति के हाथों में इसकी बागडोर आ जाने से स्थितियों में सुधार की संभावना बलवती हुई है. . .आइये सूत्रधार के साथ नाट्य विद्यालय का जायजा लें. . . . .

भरतमुनि के वंशधर

सूत्रधार

देखनेवालों ने अपने ढंग से देखा और उसी कुटिलता से बयान किया— "राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय फैशनपरस्त लोगों की वह दुनिया है जहां पचास फीसदी लोग नशे में रहते हैं. चालीस फीसदी लड़कियों के चक्कर में, शेष दस फीसदी दिमागी रूप से खाली होकर कालांतर में या तो आत्महत्या कर लेते हैं या फिर फन से महरूम होकर पनवाड़ी की दुकान चलाने लगते हैं."

यह बात इतनी बार और इतने सुनियोजित ढंग से कही गयी कि लोग इस पर बरबस विश्वास भी करने लगे. और पते की बात तो यह कि इसे कहने वाले दोनों तरफ के लोग रहे (हैं). . . रंगमंच से जुड़े हुए भी और मात्र सनसनीखेज बात कहकर अपनी अहमियत जताने वाले भी. जबकि दोनों की नीयत में एक बुनियादी फर्क रहा. जिसे या तो उजागर नहीं किया गया, या फिर वे इतने ठोस नहीं थे कि उनका दूसरा पहलू भी स्पष्ट हो पाता. जो भी हो 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' पर लगने वाले आरोप इन्हीं (लड़की, शराब, नशा, काहिल अध्यापक, अपाहिज व्यवस्था) शब्दों तक महदूद रहे. पिछले कुछ दिनों से सूत्रधार इन्हीं सूत्रों को पकड़े राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की दीवारों से टकराता ऐसबेस्टस की छत झांकता घूमता रहा. और जिस नतीजे पर पहुंचा वह राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के समूचे परिवार समेत उन तमाम लोगों के सामने पेश कर रहा है जिनका रंगमंच से रिश्ता है.

कल अगस्त की पहली तारीख है. और राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के नये छात्र प्रवेश ले रहे हैं, पुराने अगली कतार में जा रहे हैं, और ऐसे समय जब उसे एक नये निदेशक मोहन महर्षि जैसे पुराने, अनुभवी और योग्य व्यक्ति का साथ मिल रहा हो. . . 'सारिका' स्वागत करती है.

सूत्रधार को यह बात काफी दिनों तक कचोटती रही कि क्या वजह है कि राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय पर इस तरह के आरोप लगाये जा रहे हैं, और दरअसल सच्चाई क्या और कितनी है? लोगों से मिलना, उनके साथ बैठना, अंदरूनी खबरों के साथ कारक तत्वों तक पहुंचना. . . काफी समय तक चलता रहा. फिर कहीं जाकर यह पता चल पाया कि इस तरह की खबर फैलाने के पीछे दो तरह के तत्व एक साथ लगे रहे. एक वे, जो विद्यालय की प्रशासनिक जटिलता और शैक्षणिक कमजोरी को छिपाकर अपने को किसी न किसी रूप में ढांपे रहना चाह रहे थे. और दूसरे वे जो चटपटी चीजों को बेचकर अपने को विवाद में लाना पत्रकारिता का तर्क

मान चुके हैं. लेकिन उन्होंने यह नहीं सोचा कि इसका दूरगामी परिणाम किसके पक्ष में जा रहा है. इसी तरह की खबरों के प्रचार से प्रशासन को छात्रों को दबाने का मौका मिलता है. रंगमंच-शिक्षण से जुड़े इन छात्रों को निश्चित रूप से बधाई देनी चाहिए कि एक तरफ वे जहालत में पड़े जलालत की जिंदगी जीते रहे लेकिन अपनी मस्ती और अल्हड़पन को जस का तस बरकार रखा जो कि रंगमंच जैसी विधा के लिए जरूरी तर्क है. समझदार देखने वालों ने इसे अपने ढंग से देखा और कहा कि यह नशे में चूर पीढ़ी है. गांजा पीकर, शराब चखकर, लान में लेटे पड़े हैं, हंस रहे हैं, बतिया रहे हैं, उन्होंने यह नहीं देखा कि ये दूर-दराज से आये छात्र किस तरह पढ़ाई करते हैं, इनके रहने के लिए व्यवस्था कैसी है? कैसे खाते हैं, इनका खर्च कैसे चलता है. यह सब भी जान लेते और इन समस्याओं पर भी कुछ बोलते तो शायद कुछ बेहतर नतीजा निकलता. यह बात बहरहाल सूत्रधार इसलिए भी बजनी ढंग से कह रहा है कि उसने स्वयं इन परिस्थितियों को देखा है, और इसके लिए वह प्रोफेसर रामगोपाल बजाज, जो उन दिनों निदेशक का कार्यभार देख रहे थे, का आभारी है कि उन्होंने यह सब जानने-समझने और देखने में एक दोस्त की तरह मदद दी.

इमारत का बड़ा भाग एस्बेस्टस की छत के नीचे है. गर्मियों में गर्म, ठंड में शीत लहर और बरसात में संगीत की नयी धुनों में आपसी बातचीत जहां बेमानी हो जाये उस इमारत से पढ़ाई का क्या रिश्ता बन सकता है, सूत्रधार को नहीं मालूम. हो सकता है कि इस बात को भारत-सरकार अच्छी तरह जानती हो. शिक्षा मंत्री श्रीमती शीला कौल को चाहिए कि वे एक बार गैरसरकारी कार्यक्रम के तहत चलकर इस विद्यालय तक आयें और देखें कि भारतीय संस्कृति की एक मजबूत परंपरा किस तरह दम तोड़ रही है. सूत्रधार यहां एक बात स्पष्ट करना चाहता है कि अक्षर ज्ञान की शिक्षा, जिसे सरकार विश्वविद्यालय तक पहुंचाने के लिए पता नहीं कितने करोड़ रुपया बर्बाद करके 'न घाट का न घर का' बना रही है उसकी अपेक्षा हुनर और दिमाग की यह शिक्षा कहीं सौ फीसदी बेहतर है. इन्हें सुविधाओं से महरूम मत रखिए, यहां क्लर्क नहीं यहां बेहतर इन्सान पैदा होते हैं, और इस शिक्षण-संस्थान की आवश्यक आवश्यकता कबाड़ी बाजार से निकलकर तरसीमलाल तक आकर टिक गयी है. ठोस और स्थायी दीवारों का दिखावटी स्वरूप तरसीमलाल के हाथों का कमाल हो सकता है लेकिन इस सच्चाई से इनकार नहीं किया जा सकता कि सब बेमानी है.

विद्यालय के द्वार से प्रवेश करते ही लगेगा आप किसी मुंसीपाल्टी के दफ्तर में घुस गये हैं. यह कलाकारों का आश्रम है, कहीं से भी नहीं लगता. तीन सोफे, दो पंखे, एक टाट, दो चपरासी, एक फोन, फ्लावर पॉट की पेंटिंग, एक केबिन सब रिशेप्सन के साथ एकाकार हो चुके हैं, जिन्हें देखकर ऐसा लगता है जैसे एक गैलरी के सामने स्थायी रूप से रख दिए गये हैं जिनका काम है हर आने वाले की जांच करना और धौंस खाना-खिलाना, आगंतुक चाहे कत्थक केंद्र का हो या ललित कला का, यहां तक कि मंडी हाउस के रेगुलर विजिटर भी अपनी महिला मित्र के साथ इधर ही एकांत खोजते हैं और कूलर के पानी के साथ गर्मी मिटाते हैं.

इन्हीं के सामने शुरू होते हैं गैलरी में पड़े प्रशासनिक विभाग, वित्तविभाग वगैरह-वगैरह. रचनाकार, कलाकार यहां कहीं दूर तक नहीं दिखाई देते. इन सब में कितने बदलाव की जरूरत है. मोहन भाई ही समझेंगे. सूत्रधार तो मात्र परिवर्तन का हामी भर है.

आगे छोटी-छोटी कथाएं हैं. बीस-बीस छात्र पीछे एक अदद अध्यापक है और अस्थायी रूप से चल रहा आठ वर्षीय सार्वजनिक मूत्रालय है. इस

● रामगोपाल बजाज

परिवार पर इसका क्या असर पड़ता होगा. कहना उतना आसान नहीं है जितना कि आप इस शब्द पर हंस रहे हैं कि यह भी कोई समस्या है जिसे यह सूत्रधार उठा रहा है, लेकिन यह है और इसका हल जरूरी है, ठीक उसी तरह जैसे महिला-छात्रावास की व्यवस्था है.

किसी जमाने में घोड़े का अस्तबल अब भारतीय रंगमंच में नाम कमाने वाली नायिकाओं का निवास-स्थान बनाया गया है. पानी और मेंढ़क की उछल-कूद में फंसी संभावित नायिकायों को जो सहूलियत मिली है वह शर्म आने के लिए समाज, सरकार और समझदार लोगों के लिए काफी है. लैट्रिन में उठकाये गये टिन की चद्दरों की जगह महिलायें 'खांसी' से दरवाजे का काम लेती हैं. नहाना दूसरी जगह, चेहरा देखना तीसरी जगह और भोजन चौथी जगह. और तो और भोजनालय पांचवीं जगह. न खेलने की जगह न घूमने की व्यवस्था. इसमें कौन कितना और किस तरह सीखता होगा अनुमान से परे है. ऐसी ही कुछ हालत छात्र-छात्रावास की है जहां एक 'दस बाई आठ' के एक कमरे में आठ लोग रह रहे हैं, जिसमें एक पढ़ता है दूसरा हंसता है, तीसरा नाटक की लाइन याद कर रहा है तो चौथा तलवार भांजता है. नतीजा यह होता है कि कमरे की व्यक्तिगत कुंठा, रंगमंच पर सामने आ जाती है और वह इसका मरीज बन जाता है. इनके बारे में लड़की और शराब का आरोप जमता नहीं, अगर कहीं कुछ-कुछ ऐसा है तो सूत्रधार की दो मान्यताएं हैं. पहली बात तो यह शाश्वत है. चलता आया है चल रहा है, और चलता रहेगा, दूसरी बात, छात्र-छात्राओं के संबंध में डाक्टर लोहिया की एक आसान बात "वायदा खिलाफी और बलात्कार छोड़कर औरत और मर्द के सारे रिश्ते जायज हैं." जब रिश्ते इस तर्क पर बनने लगेंगें तो न तो कोई आत्महत्या करेगा या विक्षिप्त होगा न ही कोई नादिरा बब्बर इस पर टिप्पणी करेगी. □

● छाया : राकेश खत्री

● मोहन महर्षि : जोखिम भरा काम

प्रो. रामगोपाल बजाज कहते हैं. "मोहन महर्षि का आना तात्कालिक जरूरत थी और दीर्घकालिक मांग क्योंकि अब इससे ज्यादा कुछ बर्दाश्त करना इस संस्थान के लिए मुश्किल हो जाता. 'मोहन' का रंगमंच से रिश्ता प्रतिबद्धता का रहा है. और मुतवातिर तौर पर जुड़े रहे. देश में, विदेशों में, हर जगह जहां भी मोहन ने काम किया है गंभीरता से. और दूसरी बात जो ज्यादा जरूरी है वह है एक दृष्टि की पैनी समझ और उसको व्यावहारिक रूप देने की ललक चूंकि मोहन में ये सारी खूबियां इकट्ठी हैं. इस बिना पर लोग अब उम्मीद पर हैं कि विद्यालय में एक गुणात्मक परिवर्तन होगा. . .

कुछ न कुछ तो करना ही होगा...

▣ आप निदेशक की जगह आये हैं. कैसा लग रहा है?

जोखिम भरा काम है. एक चुनौती है. कुछ न कुछ तो करना ही होगा. क्योंकि आज जो हालत है यहां की . . . आसानी से उसे नहीं सुधारा जा सकता. फिर भी मैं निराश नहीं हूं. हमें उम्मीद है कि हम टीम बनाकर ही चीजों को सही जगह पर ले जा सकेंगे.

▣ 'सही' के मायने क्या हैं? क्या आप यह मानकर चल रहे हैं कि यहां जो कुछ था वह 'गलत' था!

नहीं! मैं यह नहीं कहता कि यहां जो कुछ था वह गलत था या यूं भी कह सकते हैं कि सब सही था लेकिन एक दृष्टि की कमी थी, जिसके चलते ये सारी बातें हुई, होती रहीं. समस्या है महज दृष्टि की. वह साफ हो जाये तो फिर सारी स्थिति खुद समाप्त हो जायेगी.

▣ जैसे?

दाखिला है. छात्रों का प्रवेश, उनकी पढ़ाई, सुविधा और उनके खुद को दुरुस्त करने का अवसर और इस सब से ऊपर है उसकी समझ जिसमें वे आना चाहते हैं और मैं यह मानकर चलता हूं कि यह हमारी जिम्मेदारी है कि उन्हें हम कितना योग्य बनाकर निकालते हैं.

▣ इसके लिए आप क्या कर रहे हैं?

बहुत कुछ! अभी तो प्रवेश को ही लेकर कुछ विचार-विमर्श चल रहा है. उसे किस तरह व्यवस्थित किया जाये. क्योंकि हमने यह महसूस किया कि अच्छे लोग दूर ही रह जाते हैं. जैसे कलकत्ता, मद्रास, बंबई और भी कई जगहें हैं, वहां से जो लोग हमारे यहां प्रवेश के लिए आये हमने देखा कि वे अनुमान के अनुसार उतने अच्छे नहीं थे जितना हम समझकर चले थे. इसके लिए जरूरी है कि हम राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के बारे में लोगों को ज्यादा से ज्यादा बतायें और सीधे उनके संपर्क में रहें. इसके लिए हमने तय किया है कि सूबों की राजधानियों में जो अकादमियां हैं और काम कर रही हैं, उनसे संपर्क बना रहे. और हमारी यह भी कोशिश है कि रंगमंच की तरफ रुझान रखने वाले छात्र यदि आर्थिक रूप से कमजोर हैं उनकी प्रवेश परीक्षा की जिम्मेवारी उस सूबे की अकादमी व्यवस्था करे. वर्ना इस टू-टायर सिस्टम में तो छात्र पिसकर ही रह जायेगा.

▣ प्रवेश के लिए आप जो आधार बनाते हैं उसके लिए क्या देखते हैं?

यही तो मूल बात है. दरअसल, हमें देखना चाहिए कि छात्र में संगीत, नृत्य, मनोविज्ञान आदि की कितनी समझ है. जब तक यह नहीं होगा. . . फिर तो बहुत मुश्किल हो जाता है.

▣ शैक्षणिक बदलाव?

जरूरी है! हमारी समझ से निर्देशन का कोर्स समाप्त कर देना चाहिए. डाइरेक्शन एज सच कुछ नहीं होता. क्योंकि छात्र को सब कुछ पढ़ाया जाता है. निर्देशन निर्भर करता है उसकी अपनी समझ पर. □

हलचल

आल इंडिया आर्टिस्ट्स एसो-सिएशन का पुरस्कार समारोह

● एवार्ड ग्रहण करते हुए नंदनजी

पिछले दिनों हिमाचल प्रदेश के लोकायुक्त न्यायमूर्ति श्री टी.वी. आर. ताताचारी ने टाउन हाल, शिमला के एक भव्य समारोह में आल इंडिया आर्टिस्ट्स एसोसिएशन की ओर से पत्रकारिता के लिए प्रतिवर्ष दिया जानेवाला 'भारतेंदु हरिश्चंद्र एवार्ड' सुपरिचित कवि, समीक्षक और पत्रकार श्री कन्हैयालाल नंदन को और कथा साहित्य के लिए दिया जानेवाला 'पीपुल्स एवार्ड' युवा कथाकार बलराम को समर्पित किया. इस अवसर पर बोलते हुए उन्होंने कहा कि क्षेत्रीय और सांप्रदायिक भावनाओं से ऊपर उठकर रचनाकारों को व्यापक मानवीय दृष्टिकोण अपनाना चाहिए. सामाजिक सरोकारों से लैस रचनाकार यदि समाज को रास्ता दिखा सकते हैं तो व्यावसायिक दृष्टि अपनाकर वे समाज को पथभ्रष्ट भी कर सकते हैं. अपने स्वागत भाषण में श्री सुदर्शन गौड़ ने संस्था की गतिविधियों पर प्रकाश डाला. 26 अक्तूबर, 1955 को स्वर्गीय बलराज साहनी के साथ उन्होंने इस संस्था की नींव रखी थी. संस्था प्रतिवर्ष अखिल भारतीय नाट्य प्रतियोगिता आयोजित करती है, जिसमें देश के प्रायः सभी भागों के नाट्यदल हिस्सा लेते हैं. पत्रकारिता और साहित्य के लिए इससे पहले संस्था सर्वश्री खुशवंत सिंह, कुलदीप नैयर, अरुण शौरी, विष्णु प्रभाकर, मन्नू भंडारी और केशव को सम्मानित कर चुकी है.

1 जुलाई, 1933 को फतेहपुर जनपद (उत्तरप्रदेश) के गांव परसदेपुर में जन्मे श्री नंदन इलाहाबाद विश्वविद्यालय से हिंदी में एम. ए. कर कुछ वर्ष बंबई विश्वविद्यालय में प्राध्यापक रहे और फिर ग्यारह वर्ष तक 'धर्मयुग' के सहायक संपादक रह कर 'पराग' के संपादक हो गये. कुछ वर्ष 'सारिका' का संपादन भार संभालने के बाद अब समाचार साप्ताहिक 'दिनमान' के संपादक हैं. **'मुझे मालूम है'** (कविताएं), **'नाट्य परिवेश'** (रंग आलोचना) तथा **'अंतरंग'** (इंटरव्यू) आपकी चर्चित कृतियां हैं. ब्रेख्त के एक नाटक की गीतिनाट्य में पुनर्रचना **'लुकुआ का शाहनामा'**, **'कृति-स्मृति'** (साहित्य समीक्षाएं) तथा अमृता शेरगिल पर एक कला पुस्तक शीघ्र प्रकाश्य. बच्चों के लिए **'देशी मन विदेशी धरती'** तथा **'धरती लाल गुलाबी चेहरे'** आदि किताबें लिखी हैं. कला त्रैमासिक **'आधार'** के अलावा कई पुस्तकों का संपादन भी कर चुके हैं. पहले कविता संग्रह **'मुझे मालूम है'** को उत्तरप्रदेश हिंदी संस्थान पुरस्कृत कर चुका है.

15 नवंबर, 1951 को कानपुर जनपद (उत्तरप्रदेश) के गांव भाऊपुर में जन्मे बलराम अध्यापन तथा छिटपुट नौकरियां करते हुए हिंदी में कानपुर विश्वविद्यालय से एम. ए. हुए. चार वर्ष तक दैनिक 'आज' में स्टाफ रिपोर्टर रहे और पिछले पांच वर्ष से **'सारिका'** में उपसंपादक हैं. **'कलम हुए हाथ'** तथा **'मालिक के मित्र'** (कहानियां), **'प्रतिध्वनियां'** (रिपोर्ताज), **'नेताजी की वापसी'** (हास्य व्यंग्य) तथा **'समकालीन हिंदी कहानी का सफर'** (समीक्षा) आदि कृतियां प्रकाशित. इससे पहले प्रेमचंद पुरस्कार (मध्यप्रदेश) से सम्मानित हो चुके हैं.

इस अवसर पर बोलते हुए श्री कन्हैयालाल नंदन ने कहा कि आज जो स्थिति बन गयी है, उसमें पुरस्कारों-सम्मानों और मिलने वाली राशि का कोई मतलब नहीं रह गया है. ये सब अपनी विश्वसनीयता खो चुके हैं. आल इंडिया आर्टिस्ट्स एसोसिएशन के एवार्ड अगर उस खोई हुई विश्वसनीयता को प्राप्त कर सकें तो यह एक बड़ी बात होगी. हिमाचल प्रदेश की साहित्यिक संस्था 'शिखर' के प्रधान श्री महाराजकृष्ण काव ने समारोह की अध्यक्षता की.

इस समारोह में डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय (भोपाल), हिमांशु जोशी, अवधनारायण मुद्गल, राजकुमार गौतम, धीरेंद्र अस्थाना, चित्रा मुद्गल, (दिल्ली), ओमप्रकाश थानवी (जयपुर), हृषीकेश सुलभ (पटना), यशपाल वैद (अंबाला), अवधेश कुमार (देहरादून), पुष्पपालसिंह (पटियाला), केशव, श्रीनिवास जोशी, तुलसी रमण, मौलूराम ठाकुर (शिमला), रेखा (कुल्लू), सुदर्शन वशिष्ठ (मंडी) आदि अनेक रचनाकारों ने हिस्सा लिया. ☐

केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा लेखकों की कृतियों को पुरस्कार

पिछले दिनों केंद्रीय हिंदी निदेशालय, शिक्षा और सांस्कृतिक मंत्रालय भारत सरकार ने अनेक हिंदी लेखकों की कृतियों को पुरस्कृत किया है, जिनमें से सुपरिचित कथाकार राकेश वत्स का उपन्यास 'जंगल के आसपास' तथा युवाकथाकार दामोदर खड़से का पहला कहानी संग्रह 'भटकते कोलंबस' प्रमुख हैं. ज्ञातव्य है कि राकेश वत्स के इस पुरस्कृत उपन्यास का एक अंश तथा दामोदर खड़से की अनेक कहानियां 'सारिका' में छप चुकी हैं. पुरस्कृत कृतियों के रचनाकारों को ढाई-ढाई हजार रुपये प्रदान किये जायेंगे.

● राकेश वत्स

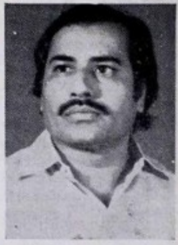

● दामोदर खड़से

राकेश वत्स अर्से से कहानियां लिख रहे हैं. 'मंच' पत्रिका का संपादन-प्रकाशन करते रहे और अब 'सक्रिय कहानी' पत्रिका निकाल रहे हैं, अपने द्वारा प्रतिपादित सक्रिय कहानी आंदोलन को आधार प्रदान करने के लिए. पुरस्कृत उपन्यास के अलावा इनके कई कहानी संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें से 'अंतिम प्रजापति' और 'बंटवारा' प्रमुख हैं. दामोदर खड़से कहानियों के अलावा कविता व लघुकथा भी लिखते हैं. हाल ही में 'काला सूरज' उपन्यास लिखा है. दया पवार के उपन्यास 'अछूत' व राम नगरकर के 'रामनगरी' का हिंदी में अनुवाद किया है और फिलहाल बैंक ऑफ महाराष्ट्र, थाणे में हिंदी अधिकारी के पद पर कार्यरत हैं. इनके अलावा केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने प्रेमचंद सहजवाला व चंद्रकांता की कृतियों को भी पुरस्कृत किया है. ☐

चुंबक चिकित्सा—एक वरदान

पिछले २ साल के चुंबक चिकित्सा के आधार पर कुछ चुंबक उपकरण तैयार किये गये हैं और ये उपकरण हमारे कार्यालय में सदा उपलब्ध रहते हैं.

बड़ा चुंबक, सिरेमिक चुंबक, चुंबकीय रोलर, रक्तदाब पट्टा, सिर का पट्टा, घुटना व गले का पट्टा, कमरपट्टा, मोती की माला, स्फटीक व रुद्राक्ष और चुंबकीय माला, चुंबक बिंदी, व्हिटीक, मेग्नेटिक रोलर, फुट रोलर.

अब तक निम्नलिखित रोगों पर अनेक व्यक्तियों को अच्छा फायदा हुआ है. इसब, घुटने का दर्द, मधुमेह, हर्निया, अपेन्डीसायटिस; दमा, मुलयव्याध, रीढ़ की हड्डी का दर्द, नेत्र-विकार, सरदर्द, नाक का दर्द, (सायनेटिस); टांसिल, दांतों का दर्द, पीलिया (जॉन्डीस), कब्जीयत, रक्तदाव, पेट का दर्द, मूत्र विकार, पथरी, संधीवात, मिरगी (हिस्टीरिया) चेहरे का लकवा, अंडकोष वृद्धि, हृदय विकार, सायटीका, स्त्रियों का रक्तस्राव, प्रदर आदि.

चुंबक का जल (२४ घंटे का) लेने से ७० फीसदी रोग अच्छे होते हैं. ध्यान रहे चुंबक इलाज सिर्फ लकड़ी पर बैठकर ही किया जाता है.

संपर्क : पूनमचंद राठी, चुंबक चिकित्सक, (मैग्नेटोथिरापिस्ट)
राऊतवाडी, स्कूल नं. ५ के पीछे,
अकोला-४४४००५.